मूल्य 20 रुपये

चौथी दुनिया

दिल्ली रविवार 7 जून 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

भीतर

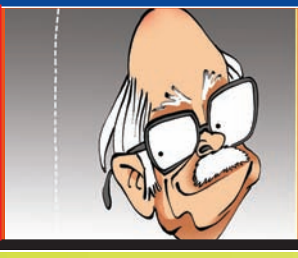

3 आडवाणी जी, हार के कारणों को समझिए

5 कांग्रेस को सत्ता मिली है, जनादेश नहीं

7 क्या गुल खिलाया मुस्लिम पार्टियों ने?

इतिहास के आईने में आडवाणी

संध्या पांडे

लालकृष्ण आडवाणी के जीवन की 50 वर्षों की राजनैतिक यात्रा से उनके 51 विरोधाभास ही उभरते हैं. रही-सही कसर एनडीए सरकार के दौरान बतौर गृह मंत्री उनके कामकाज की समीक्षा से पूरी हो जाती है. साफ पता चलता है कि भाजपा का यह नेता कमज़ोर, सिद्धांतहीन और नितांत अवसरवादी विचारधारा वाला तो है ही, वह डरपोक भी है. गुजरात के गोधरा कांड और उसके बाद वहां हुए दंगों के दौरान आडवाणी की भूमिका जहां मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी का बचाव करने वाले की रही, वहीं बाबरी विध्वंस के लिए अपने को बचा कर दूसरों को फंसाने वाली भी रही. लेकिन सत्ता के प्रेम और चुनाव में सब कुछ जायज़ के उनके सिद्धांत को उनकी ही एक किताब ने तार-तार कर दिया है. किताब का नाम है-मेरा देश, मेरा जीवन. हिंदी और अंग्रेज़ी में आडवाणी जी की यह मोटी पुस्तक पंद्रहवीं लोकसभा चुनाव से कुछ माह पहले आई थी. इसमें उन्होंने अपने जीवन और राजनैतिक सफ़र के बारे में विस्तार से लिखा है. इस पुस्तक के सहारे आडवाणी जी के बारे में जो जानकारियां निकली हैं, वह रोचक के साथ-साथ आश्चर्यजनक भी हैं. इस किताब से पता चलता है कि चाल, चरित्र और चिंतन के मामले में भाजपा का यह कथित मज़बूत नेता कितने विरोधाभासों से भरा है.

शुरुआत स्वतंत्रता संग्राम में उनकी भूमिका से. आडवाणी ने 1942 में जब हैदराबाद (सिंध) के दयाराम गिदूमल कॉलेज में प्रवेश किया, तब भारत छोड़ो आंदोलन शुरू हो चुका था. शहर में स्थिति अशांत होने के कारण कॉलेज मुश्किल से ही सुचारू रूप से चल पाता और अधिकतर विद्यार्थी इधर-उधर घूमते रहते थे. ऐसे में समय गुज़ारने के लिए कॉलेज की लाइब्रेरी उनकी पसंदीदा जगह होती थी. जहां तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) से जुड़ने की बात है तो आडवाणी 14 वर्ष की आयु में स्वयंसेवक बन गए थे. चूंकि संघ ने आज़ादी के आंदोलन में भाग नहीं लिया था, इसलिए उनके भी आज़ादी की लड़ाई में भाग लेने का सवाल ही नहीं उठता. फिर भी आडवाणी जी अपने को देशभक्त और राष्ट्रवादी कहते हैं तो यह उनका बड़बोलापन ही कहलाएगा. वैसे उन्होंने 1946 में नागपुर में आरएसएस में तीसरे वर्ष का प्रशिक्षण भी पूरा किया, लेकिन कभी स्वतंत्रता आंदोलन के लिए कोई काम नहीं किया. लगभग 17 वर्ष की आयु में उन्होंने शिक्षक की नौकरी शुरू कर दी थी.

यह तो सब जानते हैं कि आडवाणी पाकिस्तानी शरणार्थी हैं, लेकिन यह बहुत कम लोगों को पता है कि वह दरअसल भागकर आए थे. बात 9 सितंबर 1947 की है. उस दिन कराची की संभ्रांत कॉलोनी-शिकारपुर-में बम विस्फोट हो गया था. उस विस्फोट को देखते हुए संघ के संघचालक खानचंद गोपालदास और अन्य प्रमुख 19 स्वयंसेवकों को गिरफ़्तार कर लिया गया. आडवाणी को उस विस्फोट के बारे में कोई जानकारी नहीं थी. फिर भी चूंकि स्थानीय प्रेस ने संघ के विरुद्ध गंभीर आरोप लगाने शुरू कर दिए थे, इसलिए उन्हें शहर छोड़ देने की सलाह दी गई. सलाह मानते हुए 12 सितंबर को वह विमान से दिल्ली के लिए रवाना हो गए. उनके साथ एक स्वयंसेवक मुरलीधर भी थे. वह एक ब्रिटिश ओवरसीज एयरवेज कॉरपोरेशन (बी.ओ.ए.सी.) के प्रोपेलर एयरक्राफ्ट में चढ़े. विमान से उनकी यह पहली यात्रा थी. वह पाकिस्तान से एक शरणार्थी के रूप में यात्रा कर रहे थे, लाखों अन्य लोगों की तरह आश्रय की चाह और विभाजित भारत में एक नई शुरुआत करने के लिए.

वह जब भारत आए, तब एक शरणार्थी के रूप में ही आए थे. यानी भारत एवं पाकिस्तान की रक्त रंजित सीमा रेखा के दोनों ओर लाखों लोगों की तरह उन्हें (आडवाणी को) भी अपने घर से बेघर होना पड़ा और वह शरणार्थी बन गए. शरणार्थी होने के यथार्थ ने उनमें एक ग्रंथि का रूप ले लिया. 2005 में पाकिस्तान यात्रा के दौरान एक रात्रिभोज के दौरान एक पाकिस्तानी ने आडवाणी से मज़ेदार सवाल किया था. वह सवाल जितना मज़ेदार था, उसका जवाब उतना ही अनूठा था. पाकिस्तानी ने पूछा था कि-आडवाणी साहब आप सिंधी हैं, जो विभाजन के बाद भारत में बस गए. आप भाजपा जैसी बड़ी राजनैतिक पार्टी के अध्यक्ष कैसे बन गए और आगे चलकर देश के उप प्रधानमंत्री भी? आडवाणी ने जबाव दिया-शायद आप यह जानकर हैरान होंगे कि न तो मैंने और न ही किसी अन्य प्रवासी सिंधी, पंजाबी या बंगाली ने कभी यह महसूस किया कि हम भारत में बाहर से आए हैं. यह सिर्फ़ प्रवासियों के मामले में ही सच नहीं है, बल्कि भारत के विभिन्न धार्मिक, जातीय, भाषायी और नस्ल समूहों के बारे में भी यही तथ्य खरा उतरता है. लेकिन यहां उनके व्यक्तित्व का विरोधाभास देखिए कि अपने लिए तो भारत की सभी को अपनाने और आत्मसात कर लेने की सांस्कृतिक परंपरा का गुणगान करते हैं, लेकिन सोनिया गांधी को वह उनके विदेशी मूल के लिए भारतीय राजनीति के अयोग्य मानते हैं.

> **भारतीय राजनीति में आडवाणी की बड़ी पहचान राम मंदिर आंदोलन से बनी. उन्होंने अपनी पार्टी के लिए हिंदू वोट बैंक बनाने के मक़सद से अयोध्या में कथित रामंदिर विवाद को तूल देने का काम किया. भाजपा को केंद्रीय सत्ता में लाने के उद्देश्य से उन्होंने भाजपा के मंच से राममंदिर आंदोलन चलाया और देशभर में रथयात्रा की.**

बहरहाल, शायद लाखों हिंदुओं की तरह आडवाणी ने भी कराची में ही बसने का मन बना रखा होगा, क्योंकि भारत विभाजन की बात 1947 के मई माह में ही तय हो चुकी थी और 15 अगस्त 1947 को पाकिस्तान अस्तित्व में भी आ चुका था. लेकिन एक माह बाद कराची में हुए एक बम विस्फोट में गिरफ़्तारी के भय से वह भागकर दिल्ली आ गए. इस तरह यह साफ हो जाता है कि जिस समय आडवाणी भागने को मजबूर हुए थे, उस समय यानी 1947 में सिंध में न तो संघ की कोई संगठन शक्ति थी और न ही हिंदू जनता को उस पर भरोसा था. इस बीच, भारत में महात्मा गांधी की हत्या के बाद संघ पर प्रतिबंध लगा दिया गया. संघ कार्यकर्ताओं को जेल में बंद कर दिया गया. ऐसे में आडवाणी को भी तीन माह तक राजस्थान की अलवर जेल में रहना पड़ा.

भारतीय राजनीति में आडवाणी की बड़ी पहचान राम मंदिर आंदोलन से बनी. उन्होंने अपनी पार्टी के लिए हिंदू वोट बैंक बनाने के मक़सद से अयोध्या में कथित रामंदिर विवाद को तूल देने का काम किया. भाजपा को केंद्रीय सत्ता में लाने के उद्देश्य से उन्होंने भाजपा के मंच से राममंदिर आंदोलन चलाया और देशभर में रथयात्रा की. बावजूद इसके, वीपी सिंह सरकार के गिरने के बाद 1991 में हुए लोकसभा चुनाव में वह भाजपा को बहुमत नहीं दिला सके. ख़ैर, उन्होंने अयोध्या में पूजा-अर्चना के नाम पर भारी भीड़ के साथ हमला बोला और 6 दिसंबर 1992 को षड्यंत्रपूर्वक विवादित ढांचे को ध्वस्त करा दिया. इस आपराधिक घटना को उन्होंने और उनकी पार्टी ने हिंदू जनता की जन भावनाओं का प्रकटीकरण कहा और ख़ुशी से देशभर में हिंदू सांप्रदायिकता को हवा दी. नतीजा यह हुआ कि इस घटना के बाद देश भर में दंगे हुए और जान-माल का भारी नुकसान हुआ. लेकिन जब आडवाणी और उनके साथियों पर विवादित ढांचा गिराने के षड्यंत्र के मामले में आपराधिक मामला चला और क़ानून का शिंकजा मज़बूत होने लगा तो भयभीत आडवाणी ने स्वयं को पाक-साफ और बेदाग़ बताने के लिए तरह-तरह के बहाने बनाने शुरू कर दिए और चालाकी से अदालती कार्यवाही से बचने की कोशिश करने लगे.

आडवाणी के साथियों ने भी उनके बदले हुए इस अंदाज़ पर आश्चर्य किया. आडवाणी ने कहा कि अयोध्या में बाबरी ढांचे का ध्वस्त होना उनके जीवन का सबसे दुखद दिन है. लेकिन यह बयान कितना पाखंडपूर्ण था, इसे *द हिंदू* और *इंडियन एक्सप्रेस* के सात दिसंबर वाले अंक से समझा जा सकता है. अयोध्या कांड के ठीक अगले ही दिन इन दोनों प्रमुख समाचार पत्रों ने लिखा था कि आडवाणी कारसेवकों को अयोध्या में प्रवेश के सारे रास्ते बंद कर देने का आदेश दे रहे थे, ताकि केंद्रीय सुरक्षा बलों को अयोध्या में घुसने से रोका जा सके. इतना ही नहीं, उन्होंने दोपहर दो बजे तक मुख्यमंत्री कल्याण सिंह को इस्तीफ़ा देने की अनुमति भी नहीं दी थी. कल्याण सिंह ने शाम साढ़े पांच बजे ढांचे के पूरी तरह ध्वस्त हो जाने के बाद ही इस्तीफ़ा दिया था.

23 दिसंबर को भाजपा द्वारा पारित प्रस्ताव भी ठीक इसी प्रकार का था. 24 जनवरी 1993 को आडवाणी ने अहमदाबाद में कहा था कि बाबरी ढांचे का ध्वंस भारतीय इतिहास की धारा को बदल कर रख देगा. आडवाणी ने कहा था कि उन्हें मस्ज़िद को ढहाए जाने पर कोई अफसोस नहीं है. हालांकि उनका यह भी कहना था कि उस दिन कारसेवकों ने ढांचा न ढहाने की उनकी लगातार अपील की पूरी तरह उपेक्षा कर दी थी. (इंडियन एक्सप्रेस, 24 जनवरी 1993). इसके बाद 28 फरवरी को आडवाणी ने आरएसएस के मुखपत्र-ऑर्गेनाइज़र-से भी जो कहा, वह उनके विचारों को ही व्यक्त करता है. उन्होंने कहा, अयोध्या में जो कुछ भी हुआ, उससे औसत हिंदू तनाव में नहीं है. उधर, मामले के पांच अभियुक्तों ने आडवाणी और अन्य पर ढांचा गिराने के लिए उकसाने का आरोप लगाया. इस बीच, अखिल भारतीय अयोध्या राम मंदिर कारसेवक संघ को आरोपी बनाया गया. कल्याण सिंह ने आडवणी सहित पूरे नेतृत्व पर धोखा देने का आरोप लगाया. आडवाणी ने जिस भाषा का उपयोग किया, उससे यह कतई नहीं लगता कि उन्हें घटना पर अफसोस है. बाद में अदालत के दो आदेशों में आडवाणी और अन्य को जनता को उकसा कर मस्ज़िद ढहाने के षड्यंत्र का दोषी पाया गया. सीबीआई के सबूतों के आधार पर विशेष न्यायिक दंडाधिकारी महिपाल सिंह सोढी ने 27 अगस्त 1994 को यह निष्कर्ष दिया था और मामले की पूरी सुनवाई के लिए उसे सत्र न्यायालय के पास भेज दिया था. 9 सितंबर 1997 को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ने भी इसी प्रकार का निर्णय देते हुए आडवाणी एवं अन्य आरोपियों को दोषी ठहराया था. ढांचा गिराए जाने के काफी लंबे समय बाद सुषमा स्वराज ने 14 अप्रैल 2000 को कहा था कि राम जन्मभूमि आंदोलन पूरी तरह से राजनैतिक प्रकृति का था और उसका धर्म से

(शेष पृष्ठ 2 पर)

लौहपुरुष पटेल बनाम आडवाणी

भारतीय जनता पार्टी के नेता और *पीएम इन वेटिंग* रहे लालकृष्ण आडवाणी की पुस्तक 'मेरा देश, मेरा जीवन'' में उद्घाटित तथ्यों की वास्तविकता की परख करते हुए भोपाल के विनय दीक्षित ने अपने साथियों की मदद से 'उनका जीवन, हमारा देश' नाम से एक नई किताब लिख डाली है. इन दोनों किताबों से आडवाणी जी के व्यक्तित्व के अनेक रंग-रूप सामने आते हैं. 'उनका जीवन, हमारा देश' ने कई दिलचस्प निष्कर्ष निकाले हैं, जैसे-

भाजपा में आडवाणी के व्यक्तित्व को सजाने-संवारने के लिए उन्हें 'लौह पुरुष' का विशेषण दिया गया है. भारत में सच्चे लौहपुरुष महान स्वतंत्रता सेनानी और देश के पहले उपप्रधानमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल रहे हैं. उन्हें बारदौली किसान आंदोलन के सफलतापूर्वक संचालन के लिए महात्मा गांधी ने लौहपुरुष की पदवी दी थी. आज व्यावसायिक प्रचार विशेषज्ञों की राय से भाजपा ने आडवाणी को लौहपुरुष कहना शुरू कर दिया है. आडवाणी के राम मंदिर आंदोलन को महिमामंडित करने के लिए संघ परिवार और उससे जुड़े मीडिया ने सरदार पटेल के 'सोमनाथ मंदिर जीर्णोद्धार' के महान कार्य के समकक्ष बताया है, लेकिन सोमनाथ मंदिर जीर्णोद्धार के समय न तो कोई विवाद था और न ही उस प्राचीन मंदिर को लेकर सरदार पटेल का कोई राजनैतिक एजेंडा था. सोमनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार बिना किसी सरकारी मदद के जन सहयोग से कराया गया था और मुसलमानों ने भी इस कार्य में पूरा सहयोग दिया था. सरदार पटेल ने किसी दूसरे धर्म के पूजास्थल पर जबरन क़ब्ज़ा करने या छलपूर्वक उसे विध्वंस करने का काम नहीं किया. जबकि आडवाणी ने भाजपा के राजनैतिक लाभ के लिए देश में धार्मिक उन्माद फैलाने के लिए राम मंदिर आंदोलन चलाया और सांप्रदायिकता की राजनीति को हवा देने के लिए ग़लत और भड़काऊ तथ्यों के आधार पर ऐसा माहौल बनाया कि भाजपा और संघ परिवार को अयोध्या में विवादित ढांचा ध्वस्त करने का अवसर

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

प्राप्त हो गया. सरदार पटेल ने स्वतंत्रता आंदोलन में देश का नेतृत्व किया और किसानों, मज़दूरों, आदिवासियों के हित में ब्रिटिश सरकार के ख़िलाफ़ आंदोलन चलाए, लेकिन सरदार ने सज़ा से बचने के लिए कभी कोई बहाने नहीं बनाए और न ही झूठे तर्कों का सहारा लिया. पटेल ने कई बार कारावास की सज़ा भोगी, जबकि आडवाणी हमेशा अपनी सांप्रदायिक राजनीति के फैलाव के लिए उकसाने और भड़काने वाले की भूमिका में रहे और अपने साथियों को मुसीबत में डालकर क़ानून और सज़ा से बचने के लिए अपने अपराधों से मुकरते रहे. राम मंदिर आंदोलन को अपने जीवन की सफलता और बड़ी उपलब्धि बताने वाले आडवाणी, अयोध्या के विवादित ढांचे के विध्वंस की घटना की अदालती कार्यवाही से बचने के लिए तरह-तरह के क़ानूनी उपाय करने में व्यस्त रहे और बाद में वह 'मंदिर वहीं बनाएंगे,' का वचन भी भूल गए. गुजरात के गोधरा कांड और उसके बाद वहां हुए दंगों के दौरान भी गृह मंत्री आडवाणी की भूमिका मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी को पूरी तरह बचाने वाले की ही रही. आडवाणी की पूरी राजनैतिक यात्रा और एनडीए सरकार के दौरान मंत्री के रूप में उनके कामों का ध्यान से विश्लेषण करें तो साफ पता चल जाता है कि वह कितने कमज़ोर, सिद्धांतहीन और नितांत अवसरवादी विचारधारा वाले और डरपोक किस्म के हैं. एनडीए सरकार के 1998 से 2004 तक के कामकाज पर नज़र डालें, तो देश की जनता अच्छी तरह जानती है कि उस सरकार ने देशहित की उपेक्षा की और हमेशा अनिर्णय की स्थिति में रहकर हर संकट के समय देश को शर्मसार किया.

सं. पांडेय

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

चल पड़ी गाड़ी

भारतीय प्रतियोगिता आयोग (सीसीआई) के लिए चल रहा इंतज़ार आख़िरकार ख़त्म हो गया है. उसे अपने सभी सदस्य मिल गए हैं और अब उम्मीद की जा सकती है कि जल्द ही यह आयोग काम करने लगेगा. कुछ महीने पहले तक तत्कालीन अध्यक्ष विनोद ढल के जाने के बाद से आयोग के काम शुरू करने के समय पर सरकार का रुख़ साफ नहीं था. हालांकि लगता है कि 1968 बैच के आईएएस अधिकारी धनेंद्र कुमार की अध्यक्ष पद पर नियुक्ति के बाद से इस प्रक्रिया ने तेज़ी पकड़ ली है.

धनेंद्र कुमार की नियुक्ति के बाद से पूर्व कोयला सचिव एच सी गुप्ता, आंध्र प्रदेश विद्युत नियामक आयोग की सदस्य गीता गौरी, केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के पूर्व अध्यक्ष रत्नेश्वर प्रसाद और कर अपील प्राधिकरण के पूर्व सदस्य प्रेम नारायण की भी इस पैनल में नियुक्ति हो चुकी है. अब कॉरपोरेट मामलों के सचिव अनुराग गोयल के आ जाने से आयोग के सारे उच्च पद भर गए हैं.

सूत्रों का कहना है कि सीसीआई ने इसी के साथ क़रीब 100 कर्मचारियों की नियुक्ति भी शुरू कर दी है. इनमें से 38 क़ानून, अर्थशास्त्र और जांच से जुड़े बाबुओं से भरे जाएंगे. अब इन संकेतों को देख तो यही लगता है कि आयोग अब उड़ान भरने को है.

ट्राई को मिला मुखिया

सरकार ने आख़िरकार भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकार (ट्राई) के पूर्व अध्यक्ष नृपेंद्र मिश्र के उत्तराधिकारी की खोज कर ली है. कई लोगों के बीच के इस मुक़ाबले में आख़िरकार दूरसंचार विवाद निष्पादन और अपील प्राधिकार (टीडीसैट) के सदस्य जे एस शर्मा ने बाज़ी मार ली.

सुनने में यह भी आ रहा है कि ख़ारिज़ किए गए उम्मीदवारों में पूर्व दूरसंचार सचिव डीएस माथुर भी थे जिन्होंने कथित तौर पर पद के लिए आवेदन मंगाए जाने से पहले ही आवेदन कर दिया था. यह भी कहा जा रहा है कि शर्मा का नाम शॉर्ट-लिस्ट किए गए 13 लोगों में नहीं था. जिनका नाम इस पद के लिए सबसे ज़्यादा आगे चल रहा था उनमें भारी उद्योग सचिव सत्यनारायण दास, दूरसंचार सचिव सिद्धार्थ बेहुरा, उपभोक्ता मामलों के सचिव यशवंत भावे, महाराष्ट्र के मुख्य सचिव जॉनी जोसेफ, पूर्व ऊर्जा सचिव अनिल राज़दान और दूरसंचार तकनीक आयोग के सदस्य के श्रीधर के नाम थे.

हालांकि शर्मा जिन्हें पूर्व डॉट (दूरसंचार निदेशालय) के सचिव और दूरसंचार आयोग के अध्यक्ष के तौर पर 3जी और अन्य मामलों में काफी अनुभव मिल चुका है, को इस पद के लिए चुना गया. अब उनके नए काम की हाई-प्रोफाइल स्थिति को देखते हुए उन्हें कोई ख़ास राहत नहीं मिलने वाली.

साउथ ब्लॉक

अंजुम ए ज़ैदी

आएंगे नए बाबू

ख़बर है कि नई सरकार के आने से मंत्रियों के दो पूर्व निजी सचिवों को नए पद दिए जा रहे हैं. महाराष्ट्र कैडर के 1988 बैच के आईएएस अधिकारी आशीष कुमार सिंह इससे पहले पीएमओ में निजी सचिव के पद पर कार्यरत थे. अब उन्हें वित्तीय सेवा विभाग में संयुक्त सचिव का पदभार दिया जाना है. दूसरे अफसर मनोज सुआनिक भी महाराष्ट्र कैडर के ही 1987 बैच के आईएएस अधिकारी हैं जो केंद्रीय ऊर्जा मंत्री के निजी सचिव के तौर पर काम कर रहे थे. उनकी क़ाबिलियत पर भरोसा करके उन्हें वाणिज्य मंत्रालय में अभी-अभी बना एक महत्वपूर्ण पद दिए जाने की बात चल रही है. यह रिक्त स्थान संयुक्त सचिव के पद का है.

स्वास्थ्य मंत्रालय में नया अतिरिक्त सचिव

राजस्थान के 1978 कैडर के आईएएस अधिकारी राजीव महर्षि अब भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय में अतिरिक्त सचिव के पद की शोभा बढ़ाएंगे. हालांकि इस पद के लिए उनका चयन बहुत पहले ही कर लिया गया था, लेकिन 15वीं लोकसभा के चुनाव की वजह से उनकी नियुक्ति रोक दी गई थी.

अनुमान है कि जल्द ही वह इस पद का कार्यभार संभाल लेंगे. इससे पहले इस पद पर जी सी चतुर्वेदी कार्य कर रहे थे. उन्हें वित्त मंत्रालय में वित्तीय सेवाओं के प्रमुख का पद ग्रहण करने के लिए यह पद छोड़ना पड़ा. उम्मीद है कि उनकी नियुक्ति इस बार फाइनल हो ही जाएगी.

राघव चले वाणिज्य मंत्रालय

वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के वाणिज्य विभाग में संयुक्त सचिव के पद पर कार्य कर रहे मध्यप्रदेश कैडर के 1981 बैच के आईएएस अधिकारी जयंत दासगुप्ता जल्द ही पदमुक्त होने वाले हैं. हालांकि उनके उत्तराधिकारी की खोज कर ली गई है. ख़बर है कि उनके बाद उनकी जगह इस पद के लिए राघव चंद्रा का नाम प्रस्तावित किया गया है.

चंद्रा मध्यप्रदेश के 1982 बैच के आइएएस अधिकारी हैं. अनुमान है कि उनके पदग्रहण की फाइल अधिकारियों ने पास कर दी है. अब बस आधिकारिक घोषणा का इंतज़ार है.

इतिहास के आईने में आडवाणी

पृष्ठ एक का शेष

कोई लेना-देना नहीं था. यह कितना राजनीतिक था, इसका खुलासा उमा भारती ने किया.

ख़ैर, आडवाणी पिछले दिनों मोहम्मद अली जिन्ना को लेकर काफी विवादों में रहे. कहना न होगा कि जिन्ना को भारत-पाक विभाजन का सूत्रधार माना जाता है. पूरा देश इस ऐतिहासिक सत्य को स्वीकार करता है. पाकिस्तान का निर्माण जिन्ना के धर्म आधारित राष्ट्र निर्माण के सिद्धांत के कारण ही हुआ. अपने सार्वजनिक जीवन के शुरुआती दौर में जिन्ना कांग्रेस के मंच से देश की आज़ादी के लिए मांग उठाते रहे थे और वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षधर भी रहे. लेकिन बाद में जिन्ना राजनैतिक स्वार्थों के कारण मुस्लिम लीग में शामिल हो गए और मुसलमानों के लिए पृथक राष्ट्र की मांग उठाने लगे. पाकिस्तान निर्माण के बाद जिन्ना वहां के पहले राष्ट्रपति बने. जब पाकिस्तान के बुलावे पर आडवाणी मई 2005 में पाकिस्तान गए और वहां उनका जिस प्रकार से स्वागत हुआ, उससे वह अभिभूत हो गए. इतना कि कराची में जिन्ना के मक़बरे पर जाकर भारत विभाजन के मुख्य सूत्रधार जिन्ना को भावभीनी श्रद्धांजलि दी और वहां रखी आगंतुक पुस्तिका में महान स्वतंत्रता सेनानी सरोजनी नायडू के कथन का उल्लेख करते हुए जिन्ना को हिन्दू-मुस्लिम एकता का राजदूत बताया और लिखा कि जिन्ना साहब पाकिस्तान में पंथ निरपेक्ष राज्य की स्थापना करने के पक्ष में थे. वह सेकुलर थे. वर्षों तक अखंड भारत का नारा देने वाले आडवाणी को 2005 में कराची जाकर यह बात समझ में आई कि विभाजन को बदला नहीं जा सकता है. उनके जिन्ना प्रेम की कुछ वजह भी थी. असल में जिन्ना के नवासे नुस्ली वाडिया, जो मुंबई के बड़े व्यवसायी हैं, जनसंघ के ज़माने से आडवाणी के क़रीबी मित्र हैं. बहरहाल, यह सब उन्होंने प्रधानमंत्री पद पाने के उद्देश्य से नई इमेज बनाने के लिए किया. इसके लिए ही उन्होंने पाकिस्तान में जिन्ना का सहारा लिया और बताया कि जिस तरह जिन्ना धर्मनिरपेक्ष होते हुए भी सांप्रदायिक मुस्लिम लीग के नेता रहे, उसी तरह वह भी भीतर से तो धर्मनिरपेक्ष हैं, लेकिन हिंदू राजनीति के लिए भाजपा की सांप्रदायिक राजनीति करने पर मजबूर हैं. लेकिन 2009 के आम चुनाव में न माया मिली, न राम. उनकी मुखौटों की राजनीति को जनता ने ख़ारिज़ कर दिया. भाजपा वाले जम्मू-कश्मीर में लागू अनुच्छेद 370 का लंबे समय से विरोध करते रहे हैं. वे इसे समाप्त कर जम्मू-कश्मीर को मिला विशेष राज्य का दर्जा ख़त्म करना चाहते हैं. इस सिलसिले में 20 अप्रैल 2008 को *द डॉन* समाचार चैनल को आडवाणी ने जो साक्षात्कार दिया था, उसमें उनकी समझ और कश्मीर मुद्दे पर उनकी प्रतिबद्धता की पोल खुल गई. आडवाणी ने कहा था- कश्मीर पर मेरा अंतिम वाक्य यही है कि अन्य मसलों पर पहले चर्चा की जाए और कश्मीर मुद्दे को छोड़ दिया जाए...इसमें काफी समय लगेगा. यहां तक कि मुशर्रफ से कश्मीर मुद्दे पर चर्चा करने का भी उन्होंने विरोध किया था. इस मामले में तत्कालीन प्रधानमंत्री वाजपेयी बुनियादी तौर पर आडवाणी के ख़िलाफ़ थे. इसी कारण 21 फरवरी 1999 को नवाज़ शरीफ़ के साथ लाहौर शिखर-वार्ता के दौरान वाजपेयी न केवल कश्मीर समस्या पर चर्चा करने के लिए तैयार थे, बल्कि एक श्रृंखला तैयार करने के पक्ष में भी थे, लेकिन वाजपेयी की इस इच्छा को पूरी तरह दबा दिया गया.

बाद में 2004 में आडवाणी ने भारत की विदेशी नीति को सांप्रदायिक रंग देने के पूरे प्रयास किए. उनके मुताबिक, भाजपा ही पाकिस्तान के साथ भारत की सभी समस्याओं का समाधान निकालने में सक्षम है, क्योंकि हिंदू यह कभी नहीं सोचेंगे कि भाजपा वालों ने ही देश को बेचने जैसा कुछ किया है. परमाणु करार पर भी भाजपा नेता का रुख़ ध्यान खींचता रहा है. एनडीए सरकार के रक्षा मंत्री और विदेशी मंत्री रहे जसवंत सिंह ने अमेरिका के तत्कालीन विदेश मंत्री स्ट्रोब टालबॉट को तीन प्रस्ताव दिए थे. उन्होंने नियंत्रण रेखा के आधार पर कश्मीर विवाद को हल करने, भारत द्वारा परमाणु परीक्षण संधि पर हस्ताक्षर करने और इराक़ में शांति सेना भेजने के लिए सहमत होने की बात कही थी. लेकिन भारतीय जनमत और कांग्रेस पार्टी के दबाव के कारण एनडीए सरकार ऐसा ग़लत क़दम नहीं उठा पाई. लेकिन इस पूरे मामले में प्रकाश डालने के बजाय आडवाणी मौन ही रहना चाहते हैं.

वैसे देखें तो भाजपा नेता आडवाणी की अनदेखी मतदाताओं ने तो की ही है, पार्टी वाले भी इसमें कभी पीछे नहीं रहे. ख़ास कर विदेश नीति के मामले में. पार्टी ने आडवाणी की विदेश नीति और कूटनीति संबंधी ज्ञान पर हमेशा अविश्वास किया. यही कारण रहा कि एनडीए के शासनकाल में विदेश मंत्रालय और प्रधानमंत्री सचिवालय के वरिष्ठ अधिकारियों ने एक बार अमेरिकी प्रतिनिधि से बातचीत के समय आडवाणी की घोर उपेक्षा की थी. इससे वह कितने दुखी हुए थे, यह इसी से पता चल जाता है कि इसका जिक्र उन्होंने अपनी किताब-मेरा देश, मेरा जीवन-में भी किया. हुआ यूं कि जब कोलिन पॉवेल भारत दौरे पर आए, तब वह यह जानकर हैरान रह गए थे कि उनका नाम उनसे मुलाक़ात करने वालों की सूची में शामिल नहीं था. बाद में जब इस बारे में प्रधानमंत्री कार्यालय से पूछताछ की गई, तो वहां से बताया गया कि चूंकि दस दिन पहले ही वांशिगटन में वह अमेरिकी मंत्री से मुलाक़ात कर चुके हैं, ऐसे में इतनी जल्दी दोबारा मुलाक़ात की ज़रूरत नहीं है.

आतंकवाद हमेशा से भाजपा नेता का प्रिय विषय रहा है. वह इस सिलसिले में सत्तारूढ़ संप्रग और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को आड़े हाथ लेना कभी नहीं भूलते. लेकिन सच्चाई यह है कि कांधार विमान अपहरण कांड और उस समय आतंकवादियों से हुई सौदेबाज़ी की घटनाएं एनडीए सरकार के कार्यकाल में भारत के माथे पर लगा ऐसा कलंक है जो समय के साथ और ताजा ही होता जा रहा है. लेकिन भाजपा के फ़र्ज़ी लौहपुरुष आडवाणी इस मामले में बड़े मासूम बने दिखाई देते हैं. वह इस घटना की ज़िम्मेदारी से साफ बच निकलना चाहते हैं और जब कहते हैं कि वह आतंकवादियों के साथ सौदेबाज़ी के ख़िलाफ़ थे, तो तत्कालीन केंद्रीय मंत्रिमंडल के दूसरे सदस्य आडवाणी के इस दावे की पुष्टि नहीं करते हैं.

हालांकि चुनाव में येन-केन-प्रकारेण सफलता हासिल करने के लिए आडवाणी जी ने नए-नए मुद्दे उछाले. जैसे-स्विस बैंक में जमा लाखों-करोड़ों रुपए के काले धन को वापस भारत लाने का. सवाल है कि छह वर्ष तक सत्ता में रहने पर भी आडवाणी को कभी इस समस्या का पता क्यों नहीं चला. आज जब प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और वित्त मंत्री चिदंबरम स्विस सरकार को लगातार तीन पत्र लिख कर यह पैसा मांगने की कार्यवाही कर चुके हैं, तब आडवाणी इसे सार्वजनिक बहस का मुद्दा बना रहे हैं. विदेश में जमा पैसा वहां की सरकार की मर्ज़ी से ही भारत वापस लाया जा सकता है. लेकिन आडवाणी स्टंटबाज़ी के लिए ही यह मुद्दा लगातार उछालते रहे.

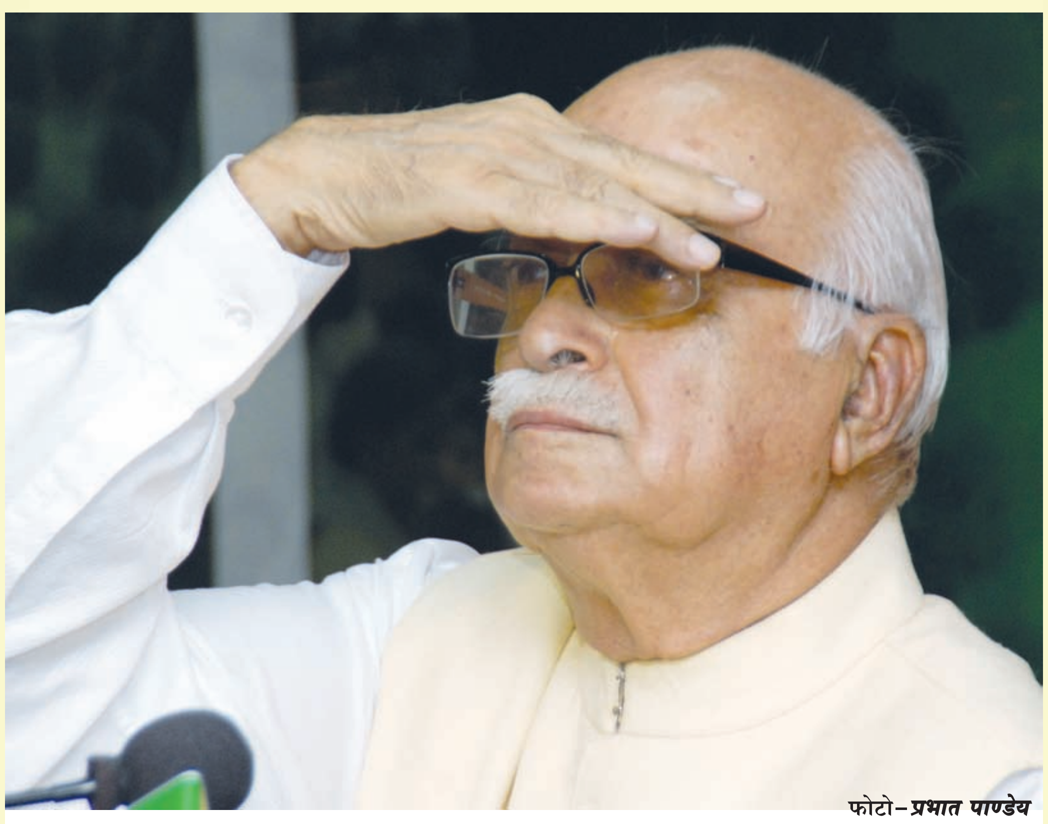

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

इसी तरह आडवाणी ने भारत की नदियों को जोड़ने का मुद्दा भी उछाला, जबकि 1952 से ही भारत में दस्तूर प्लान और इसके बाद दूसरी कई ऐसी योजनाएं बनी हैं, जिनमें भारत की तमाम नदियों को जोड़ने पर बल दिया गया है. लेकिन यह काम आसान नहीं है. इसलिए कि नदियों को एक साथ जोड़ने से राज्यों और देश का सामाजिक, राजनैतिक भूगोल बदलेगा और जगह-जगह भूमि जलमग्न होगी. इसके अलावा नदियों को जोड़ने की यह योजना पचास-साठ सालों में पूरी होगी और तब तक इस पर अरबों-खरबों ख़र्च करना होगा. इसलिए भारत सरकार ने इस योजना पर धीरे-धीरे अमल करने की तैयारी बहुत पहले से की हुई है. इसके तहत काम हुए भी हैं. जैसे जमुना-सतलज नहर लिंक. इस काम में राज्यों का सहयोग ज़रूरी है, जबकि हमारे देश में राज्यों के बीच नदी जल बंटवारे को लेकर वर्षों से विवाद चल रहे हैं. नर्मदा को लेकर मध्यप्रदेश- गुजरात में विवाद, कावेरी पर तमिलनाडु-कर्नाटक में विवाद, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली में नदी जल बंटवारे को लेकर विवाद और ऐसे अनेक मामले हैं. इन विवादों में भाजपा जैसे राजनीतिक दल वास्तविकता को समझे बिना अपनी राजनीति की राटियां सेकते हैं. नर्मदा विवाद में जनसंघ और भाजपा ने गुजरात और मध्यप्रदेश में अलग-अलग और परस्पर विराधी रुख़ अपनाकर वर्षों आंदोलन किए हैं. इसलिए यह मुद्दा नहीं होना चाहिए, बल्कि इस पर शांति से काम होना चाहिए.

इतना ही नहीं, आडवाणी भ्रष्टाचार विरोधी भी नहीं हैं. एनडीए सरकार के दौरान पार्टी अध्यक्ष बंगारू लक्ष्मण एक लाख रुपए रिश्वत लेते कैमरे पर दिखाई दिए थे. सांसद दिलीप सिंह जूदेव होटल में शराब पीते हुए रुपए माथे से लगाकर यह कहते सुने और दिखाई दिए थे कि *पैसा ख़ुदा तो नहीं है, लेकिन ख़ुदा से कम भी नहीं है*. लेकिन आडवाणी जी का विरोधाभास देखिए कि उन्होंने इन नेताओं को सम्मानपूर्वक गले लगाए रखा. इसी तरह कई मंत्रियों, सांसदों और भाजपा नेताओं पर भ्रष्टाचार के आरोप लगे, जिनका आडवाणी ने खुलकर बचाव किया. भाजपा के सांसद प्रश्न पूछने के बदले रिश्वत लेने के आरोप में पकड़े गए. एक सांसद कबूतरबाज़ी में गिरफ़्तार हुए. कई सांसदों ने पाला बदल कर पार्टी नीति के ख़िलाफ़ मतदान किया, तब कांग्रेस को बदनाम करने के लिए संसद में लाखों रुपए उछालने का हंगामा खड़ा करने वाले सांसदों के मामले में आडवाणी डटकर उनके पक्षधर बने रहे. जबकि वह हमारे संसदीय लोकतंत्र को बदनाम करने वाली एक सबसे निंदनीय घटना कही जाती है.

चाल, चरित्र और चिंतन में इतने अंतर वाले नेता और उनकी पार्टी-भाजपा-को चुनाव में ख़ारिज़ कर क्या मतदाताओं ने ग़लत किया? नहीं. ग़लती तो उन धर्मनिरपेक्ष दलों के नेता कर रहे हैं, जो इतना सब कुछ जानने-समझने के बाद भी भाजपा की अगुआई वाले गठबंधन-राजग-में बने हुए हैं. इतिहास दूसरा मौका सबको देता है, लेकिन भाजपा के मित्र दल उसके लिए बार-बार अवसर कब तक मांगते रहेंगे?

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

आर एन आई रजि.न.45843/86

वर्ष 23 अंक 12, 7 जून 2009

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के - 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के -2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

आडवाणी जी, हार के कारणों को समझिए

अगर भारतीय जनता पार्टी को अपनी हार का सही आकलन करना है. संगठन को सुदृढ़ करना है तो सबसे पहले पार्टी इस चुनाव में हुए ख़र्च का जायजा ले. यह पता करना ज़रूरी है कि चुनाव के लिए पैसे कहां से आए, किसने दिए और वह किसके ज़रिए आया. दूसरी पड़ताल इस बात की होनी चाहिए कि पैसे कहां-कहां ख़र्च किए गए, कितना ख़र्च हुआ और किसके ज़रिए ख़र्च हुआ. इस बात का भी आकलन ज़रूरी है कि जो पैसे ख़र्च किए गए, उसका नतीजा क्या निकाला. क्या पैसा वाकई उन चीज़ों में ख़र्च किया गया जिसके लिए इसे पार्टी फंड से लिया गया था? क्या इन पैसों का उपयोग सही ढंग से किया गया? कार्यकर्ताओं का कहना है कि अगर इन बातों पर तहक़ीक़ात की जाए, तो दूध का दूध और पानी का पानी हो जाएगा.

मनीष कुमार

चुनाव परिणाम निकलने के बाद से ही भाजपा मुख्यालय में अजीब-सा सन्नाटा पसरा है. ऐसा लगता है कि कोई तूफ़ान आने वाला है. दिल्ली के इस दफ्तर में सब कुछ पहले जैसा ही है, बस हंसते-खिलखिलाते लोग नहीं हैं. अगली सरकार हम बनाएंगे, वाले विश्वास से भरे चेहरे गायब हैं. टीवी और अख़बारों के संवाददाता नेताओं से मिलने आज भी आते हैं, लेकिन मुख्यालय में कोई नहीं मिलता. इसकी दो वजहें हो सकती हैं-हार के हताश नेताओं को ऑफिस आने की इच्छा नहीं हो रही है, या फिर नेताओं की गतिविधियां कहीं और चल रही हैं. भाजपा में फ़िलहाल जो कुछ भी चल रहा है, उसमें दूसरा कारण ही सटीक बैठता है. नेता घर पर भी नहीं मिल रहे हैं. पार्टी की दूसरी पंक्ति के नेता लगातार मीटिंग कर रहे हैं, मिलने-मिलाने का दौर चल रहा है, गिले शिकवे दूर करने की कवायद हो रही है, पार्टी के अंदर नए समीकरण बन रहे हैं. इस सबके बारे में जब जानकारी लेने की कोशिश की तो जवाब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोगों ने दिया कि लोकसभा चुनाव के परिणाम तो आ चुके हैं, लेकिन भाजपा का आंतरिक परिणाम आना अभी बाक़ी है.

चुनाव हारने के बाद जब लालकृष्ण आडवाणी ने मुंह खोला तो हार के ऐसे-ऐसे तर्क दिए कि सारे लोग हैरान हो गए. आडवाणी ने कहा कि भाजपा हारी नहीं, कांग्रेस जीत गई, लोगों ने वामपंथियों को सबक़ सिखाने की ठान ली थी, लोगों ने क्षेत्रीय दलों को नकार दिया और जनता देश में द्विदलीय प्रणाली को चाहती है. सीताराम येचुरी की तरह अगर आडवाणी ने भी स्वीकार किया होता कि भाजपा लोगों के मन को पढ़ नहीं सकी तो लोगों की नज़र में उनकी इज़्ज़त बढ़ जाती. लेकिन उनके बयान ने पहले से ही नाराज़ कार्यकर्ताओं को और भी नाराज़ कर दिया. बयान से कार्यकर्ता इतने नाराज़ हैं कि कहने लगे हैं कि अब भी अगर पार्टी ने अपने चाल, चरित्र और चिंतन पर पुनर्विचार नहीं किया तो पार्टी रसातल में चली जाएगी.

भाजपा एक फिर नकार की मुद्रा (डिनायल मोड) में है. 2004 की तरह इस बार फिर वह इस बात से इंकार कर रही है कि जनता ने उसे नकार दिया है. वह चुनाव हार चुकी है. अपनी ग़लती स्वीकार नहीं करने का मतलब है कि भाजपा आज भी समझ रही है कि वह अपनी जगह सही है, लेकिन जनता की वजह से फ़ायदा कांग्रेस को हो गया. आडवाणी ने कहा कि जनादेश द्विदलीय प्रणाली के लिए है, इसलिए जनता ने क्षेत्रीय दलों को सबक़ सिखाया है. देश की जनता चाहती है कि केंद्र में सिर्फ़ कांग्रेस और बीजेपी का वर्चस्व हो. इन तर्कों (या कुतर्कों) से तो यही साबित होता है कि हार दिग्गज इंसानों की मानसिक क्षमता पर भी असर कर देती है. लगता है कि भाजपा के लोगों का अंकगणित कमज़ोर हो गया है. भाजपा के अपने वोट शेयर में 3.32 प्रतिशत की गिरावट हुई. जबकि इस बार वह पिछली बार के चुनाव की तुलना में अधिक सीटों पर चुनाव लड़ी है. कांग्रेस के वोट शेयर में महज 1.99 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है. कांग्रेस और भाजपा के वोट शेयर में कुल मिलाकर 1.33 प्रतिशत की गिरावट है. अब पता नहीं क्यों इस नतीजे से भारतीय जनता पार्टी ने यह मतलब निकाल लिया कि देश की जनता दोध्रुवीय राजनीति चाहती है.

इस चुनाव में राष्ट्रीय दलों को लोगों ने ज़्यादा तरजीह दी है, यह कहना भी गलत होगा. भाजपा के लोगों ने पता नहीं किस तरह से विश्लेषण किया है.हिमाचल और कर्नाटक को छोड़ भाजपा का वोट 21 राज्यों में घटा है. हैरानी की बात यह भी है कि जिन राज्यों में उनकी सीटें बढ़ी हैं वहां भी वोट का प्रतिशत कम हुआ है. जहां तक बात कांग्रेस की है तो कांग्रेस को 16 राज्यों में पिछली बार के मुक़ाबले इस बार ज़्यादा वोट मिले. लेकिन उड़ीसा में चार सीटें बढ़ने के बावजूद कांग्रेस को 7.89 प्रतिशत कम वोट मिले. कांग्रेस को महाराष्ट्र में भी कम वोट मिले. हां, राहत की बात यही है कि कांग्रेस को पंजाब में 11.06 प्रतिशत, राजस्थान में 5.77 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 6.21 प्रतिशत और अरुणाचल प्रदेश में 41 प्रतिशत वोट अधिक मिले.

देश द्विदलीय व्यवस्ता की ओर बढ़ रहा है, यह तर्क इससे भी ख़ारिज़ हो जाता है कि देश के तीन बड़े राज्यों में जिस तरह से नई पार्टियों ने बड़ी-बड़ी पार्टियों का पसीना निकाला वह देखने लायक है. आंध्र प्रदेश में फिल्म स्टार चिरंजीवी की प्रजा राज्यम पार्टी ने जो कमाल किया, उससे चंद्रबाबू नायडू का पूरा खेल बिगड़ गया. मुंबई की सारी सीटों पर राज ठाकरे की महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना को सवा लाख वोट मिले, जिससे बीजेपी और शिवसेना को झटका लगा. तमिलनाडु में विजयकांत की डीएमडीके ने दोनों बड़े गुटों को परेशान किया. इस पार्टी की वजह से जयललिता को 14 सीटों का नुकसान हुआ. असम में एयूडीएफ ने अधिक सीटें भले न जीतीं, लेकिन कांग्रेस और अगप-भाजपा गठबंधन के समीकरण बिगाड़ दिए. इसी तरह दूसरे राज्यों में भी छोटे -छोटे क्षेत्रीय दलों को लोगों का समर्थन मिला है. उत्तर प्रदेश में मायावती को ज़्यादा सीटें नहीं मिलीं लेकिन उनके लिए ख़ुशखबरी है कि 46 सीटों पर बहुजन समाज पार्टी के उम्मीदवार नंबर दो पर थे. रामविलास पासवान की लोक जनशक्ति पार्टी और लालू यादव की राष्ट्रीय जनता दल भले ही चुनाव में हार गई, लेकिन यह कहना ग़लत होगा कि उन्होंने बिहार में अपनी साख गंवा दी है. इन बातों से साफ होता है कि क्षेत्रीय दलों को सीटें कम ज़रूर मिली हों, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि लोगों ने उन्हें नकार दिया है. जनादेश का अगर भारतीय जनता पार्टी यह नतीजा निकालती है तो यही कहा जा सकता है कि अपनी हार की जिम्मेदारी लेने में उसे परेशानी हो रही है.

लगता है कि भाजपा के नेताओं ने अपनी हार पर न तो चिंतन किया और न ही इस बात की पता लगाने की कोशिश की कि वे कहां चूके. टेलीविजन चैनलों पर बताई गई बातों को सच समझ लिया. आडवाणी ने हार के बाद जो पहला बयान दिया, वह चौंकाने वाला है. पिछली बार चुनाव में हुई हार के बाद भाजपा को अपनी ही हार पर विश्वास करने में कई महीने लग गए थे. इस बार चुनाव हारने के बाद भी कहना कि यह भाजपा की हार नहीं, कांग्रेस की जीत है- सचमुच चौंकाने वाला है. आडवाणी का बयान हैरतअंगेज इसलिए भी है कि उन्होंने कह दिया कि पिछली सरकार को जिस तरह वामपंथियों ने तंग किया था उससे लोग नाराज़ हो गए और इसलिए जनता ने वामपंथियों को सबक़ सिखाने का बीड़ा उठाया. इसका फ़ायदा कांग्रेस को हो गया और वह चुनाव जीत गई. इसका मतलब तो यही है कि भाजपा को लग रहा है कि चुनाव में मुक़ाबला वामपंथियों और कांग्रेस के बीच था, तो भाजपा इस लड़ाई में कहां थी ? क्या भाजपा अब भी नहीं समझ सकी कि इस चुनाव में वह लोगों से जुड़े मुद्दे को उठाने में नाकाम रही. महंगाई थी, लोगों को नौकरी से निकाला जा रहा था, मंदी से व्यापारी परेशान थे, किसानों की ज़मीन छीनी जा रही थी, किसानों को पानी नहीं मिल रहा था, वे आत्महत्या करने को मजबूर हो गए थे,आदि -आदि. न जाने कितने मुद्दे थे जिन्हें अगर ढंग से उठाया गया होता या इन लोगों के हक़ के लिए भाजपा संघर्ष करती नज़र आई होती तो लोग उन्हें चुनकर भेजते. क्या आडवाणी जी जैसे बड़े नेता को क़बूल नहीं करना चाहिए कि पिछले पांच साल तक भाजपा लोगों की परेशानियों को मुद्दा नहीं बना सकी, इसलिए हार गई. वामपंथियों को सबक़ सिखाने वाला तर्क भाजपा की बहानेबाजी है. वामपंथियों को लोगों ने सबक़ सिखाया है, इसमें दो राय नहीं है. लेकिन यह तो सिर्फ दो ही राज्यों की बात है-केरल और पश्चिम बंगाल. केरल में यह बात कोई नई नहीं है कि वहां यूडीएफ और एलडीएफ है, जिसे जनता बारी-बारी से चुनती है. केरल में इस बार एलडीएफ की हार होने वाली है, यह तो पहले से ही लोगों को लगभग पता था. पश्चिम बंगाल में वामपंथियों की हार की वजह यह रही कि राज्य सरकार ने किसान विरोधी नीतियों को अपनाया और इस मौके को ममता बनर्जी ने हाथ से नहीं जाने दिया. किसानों की मदद से पूरे राज्य में सफल आंदोलन किया. ममता ने सिंगुर और नंदीग्राम को राष्ट्रीय मुद्दा बना दिया. किसानों को लगा कि ममता उनके हक़ के लिए लड़ रही हैं. यही वजह है कि अब तक वाम दलों को वोट देने वाले पश्चिम बंगाल के ग्रामीण मतदाता ने इस बार ममता की तृणमूल कांग्रेस को वोट दिया. भाजपा को यह बात समझनी चाहिए कि पिछले पांच वर्षों में उन्होंने एक भी आंदोलन नहीं किया, किसानों और मज़दूरों के लिए संघर्ष नहीं किया. लोगों की समस्याओं को सरकार के भरोसे छोड़ दिया. पिछली सरकार में महंगाई ने सारे रिकार्ड तोड़ दिए, फिर भी महंगाई के ख़िलाफ़ आंदोलन करने के बजाय भाजपा सिर्फ प्रेस कांफ्रेंस करती नज़र आई. भाजपा के नेताओं ने सड़क पर आंदोलन करने की परेशानी नहीं उठाई. अब आडवाणी जैसे नेता को कैसे बताया जाए कि जनता तो उसी के साथ होती है जो जनता का साथ देती है.

हार के बाद अब भाजपा में विरोध के स्वर भी सुनाई देने लगे हैं. छत्तीसगढ के बस्तर संसदीय क्षेत्र से लगातार चौथी बार लोकसभा चुनाव जीतने वाले भारतीय जनता पार्टी के सांसद बलिराम कश्यप ने यह कह कर सबको चौंका दिया कि चुनाव में लालकृष्ण आडवाणी को प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के रूप में पेश करना पार्टी की सबसे बड़ी ग़लती थी. उन्होंने कहा कि देश की जनता ने आडवाणी को प्रधानमंत्री के रूप में स्वीकार नहीं किया, इसी वजह से पार्टी की पराजय हुई. भाजपा की राजस्थान इकाई से भी आरोप-प्रत्यारोपों की आवाज़ सुनाई दे रही है. कुछ हारे हुए नेताओं ने अपने राज्य के उन नेताओं पर भितरघात का आरोप लगाया है, जो आडवाणी के क़रीबी माने जाते हैं. भाजपा के लोग तो यह भी कहने लगे हैं कि आडवाणी के ही कुछ नज़दीकी लोग नहीं चाहते थे कि भाजपा चुनाव जीते. अब जिस प्रचार अभियान के मुखिया ही यह नहीं चाहते हों कि भाजपा चुनाव जीत जाए, तब तो यह होगा ही, ग़लतियां दोहराई ही जाएंगी, जीत को हार में बदलने के लिए चाल तो चली ही जाएगी. भाजपा के नेता अब मुंह छुपा रहे हैं. पत्रकार उनसे पूछ रहे हैं कि हार की असली वजह क्या है, विश्वासघात या भितरघात?

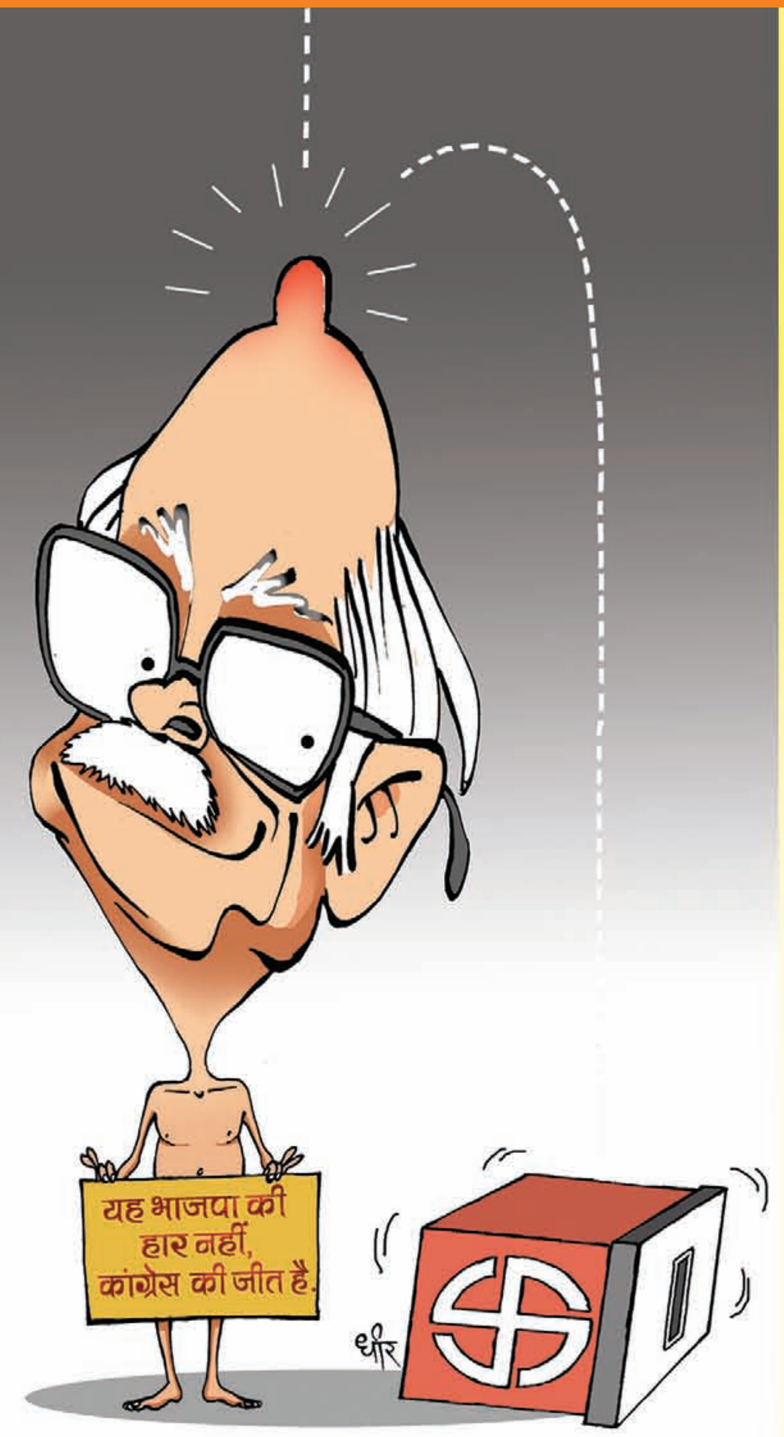

भाजपा के लिए 2009 की पराजय 2004 से अलग है. पिछली बार इंडिया शाइनिंग ने भाजपा की चमक ख़त्म कर दी तो 2009 ने भाजपा को एक कमज़ोर पार्टी साबित किया है. 2004 में हार की वजहों पर भाजपा ने ग़ौर नहीं किया और नतीजा हुआ कि पार्टी संगठन और चिंतन पर किसी ने सुधार लाने की ज़रूरत नहीं समझी. 2004 के चुनावों में हारने के बाद एक इसकी समीक्षा के लिए एक कमिटी बनी थी, जिसका नेतृत्व अनंत कुमार कर रहे थे. उस कमिटी की रिपोर्ट अब तक नहीं आ सकी है.

भाजपा के चुनावी वॉर रूम में काम करने वाले बताते हैं कि चुनाव के दौरान माहौल था कि सब मुतमइन हो चुके थे कि भाजपा चुनाव जीत रही है. यहां काम करने वाले लोगों की चर्चा का विषय होता था कि चुनाव के बाद सरकार में कौन-कौन मंत्री बनेंगे और किस नेता को इस बार किनारे कर दिया जाएगा. 2004 की तरह आडवाणी और उनके नज़दीकियों को पूर्ण विश्वास था कि चुनाव तो वे जीत ही रहे हैं. चुनाव प्रचार में आडवाणी वोट मांगने की जगह खुद को इंदिरा गांधी की तरह मज़बूत और अटल बिहारी वाजपेयी जैसा सर्वमान्य नेता बनाने में जुटे थे. भाजपा के रणनीतिकारों को जीत का भ्रम हो गया था, इसलिए आडवाणी को बैठकों और रैलियों में भाजपा नेता प्रधानमंत्री जी कह कर संबोधित करते नज़र आए. आडवाणी भी मंद-मंद मुस्कुराहट के साथ इस संबोधन को स्वीकार करते थे, उन्होंने कभी मना नहीं किया. चुनाव के दौरान वह ख़ुद को प्रधानमंत्री समझते रहे. भाजपा के चुनाव प्रचार से यही महसूस हुआ कि पार्टी ने जीत का आकलन परिणाम आने से पहले ही कर लिया था. चुनाव प्रचार को इस तरह से प्लान किया गया था कि जीत का सारा श्रेय आडवाणी को मिले. आडवाणी चाहते थे कि वह न सिर्फ़ प्रधानमंत्री बनें बल्कि इस चुनाव में एक राजनेता (स्टेट्समैन) बनकर उभरें, ताकि उनका नाम जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा गांधी की तरह भारतीय इतिहास में लिया जाए. उनकी रणनीति थी कि वह ख़ुद को अटल बिहारी वाजपेयी से ज़्यादा बड़ा राजनेता साबित कर दें. यही भाजपा की सबसे बड़ी भूल थी. इसी मानसिकता का नतीजा है कि भाजपा ने इस चुनाव में अटल बिहारी वाजपेयी को भुला दिया. अटल बिहारी वाजपेयी की जनता पर पकड़ क्या है, इस बात को न तो आडवाणी समझ सके और न ही उनके रणनीतिकार. मज़बूत नेता और निर्णायक सरकार की जगह अगर भाजपा ने वाजपेयी की अपील जारी की होती तो चुनाव के नतीजे में फ़र्क़ पड़ गया होता. भाजपा इसलिए हारी, क्योंकि उन्हें अपने पुराने कामों और नेताओं को सही तरीक़े से इस्तेमाल करना नहीं आया.

दरअसल 2009 के लोकसभा चुनाव परिणाम ने भाजपा का भ्रम तोड़ दिया है. शहरी और मध्य वर्ग का समर्थन पाने वाली पार्टी के वोटरों का इस पार्टी पर से विश्वास उठ गया है. यह भाजपा के लिए शर्मनाक स्थिति है कि इसके नेतृत्व के लिए आडवाणी के अलावा कोई दूसरा नहीं है. आडवाणी के विपक्ष का नेता बनने से भाजपा की छवि और अधिक प्रभावित हुई है. आगे आने वाले दिनों में भाजपा को अपनी विचारधारा को लेकर गहन चिंतन करने की ज़रूरत है. इसका इशारा भाजपा के नेता मुख्तार अब्बास नकवी ने दिया. हार के बाद उन्होंने बयान दिया है कि मंडल और कमंडल का दौर समाप्त हो गया है और अब विकास ही मुख्य मुद्दा है. उन्होंने कहा कि भाजपा ने जहां भी विकास, शिक्षा, सुरक्षा अैर रोज़गार जैसे सकारात्मक मुद्दों पर चुनाव लड़ा, पार्टी का प्रदर्शन अच्छा रहा. आज 70 प्रतिशत भारतीय 40 साल से कम उम्र का है और वे अपने क्षेत्र और राज्य के विकास की सोचते हैं और प्रगतिशील राजनीति में यकीन रखते हैं. पीलीभीत में वरुण के भड़काऊ भाषण से और जिन इलाक़ों में मोदी ने प्रचार किया, वहां भाजपा को नुकसान हुआ है. राजनीतिक दल के रूप में भाजपा को समाज के सभी वर्गों को साथ लेकर चलना होगा. देखने वाली बात है कि मुख्तार अब्बास नकवी की बातों का भाजपा पर कितना और क्या असर पड़ेगा?

भाजपा को अगर अपनी हार की वजह जाननी है तो उसे अपने पिछले पांच सालों के क्रिया-कलापों का विश्लेषण करना होगा. पता करना होगा कि वे कौन से कारण या कारक थे, जिनकी वजह से पार्टी एक सशक्त विरोधी दल की जिम्मेदारी नहीं निभा सकी.

आश्यर्य की बात है कि वही ग़लतियां भाजपा ने कैसे दुहरा दीं जो पिछली बार चुनाव में हुई थीं. भाजपा को संगठन में फिर से प्राण फूंकने की ज़रूरत है. प्रेस कांफ्रेंस और टेलीविजन स्टूडियो में बहस करने से जनता तक बातों को तो पहुंचाया जा सकता है लेकिन जनता से संपर्क नहीं बन पाता है. वोट पाने के लिए जनता के पास जाना होगा.

manish .chauthiduniya@gmail.com

बुढ़िया बन गई गुड़िया

सभी फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

रूबी अरुण

स वा सौ साल की बुढ़िया का रूपांतरण हो चुका है. अब वह वाकई जीती–जागती गुड़िया में तब्दील हो चुकी है. यह गुड़िया मंडल और कमंडल जैसे झंझावातों से भी उबर चुकी है. लंबे वक़्त के बाद इसने अपने दम पर अपनी पहचान एक बार फिर बना ली है. यह गुड़िया कांग्रेस है, जो आज सकारात्मक उत्साह से लबरेज है. मज़बूत जनादेश ने ऐसी ताक़त दी है कि कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह गठबंधन में शामिल दलों की सौदेबाज़ी के आगे झुकने को तैयार नहीं. करुणानिधि के परिवार–प्रेम और ममता बनर्जी के बुलंद हौसलों के आगे घुटने न टेक कर सोनिया गांधी और मनमोहन सिंह ने साफ संदेश दिया है कि वे ऐसी चुनौतियों के आगे कमज़ोर नहीं पड़ेंगे. सरकार की इस दृढ़ता का असर कांग्रेस मुख्यालय में भी देखने को मिल रहा है. हालांकि इतने दिनों बाद मिली भारी जीत की ख़ुशी का नशा कांग्रेस मुख्यालय के गोशे–गोशे में फैला है. पर कांग्रेस महासचिव राहुल गांधी की कड़ी हिदायत है कि इस खुमारी में कोई होश गंवाने का गुनाह न कर बैठे. नेताओं के साथ–साथ कांग्रेस मुख्यालय की तासीर भी गुलाबी हो चुकी है. जो नेता कभी छठे–छमाहे कांग्रेस के दफ्तर में अपने पग फेरा करते थे, उनके चेहरे अब हर दिन मुख्यालय में चमक रहे हैं. पार्टी के प्रति अपनी वफ़ादारी दिखाने का इससे चंगा मौका भला और क्या हो सकता है. सोनिया गांधी के राजनीतिक सलाहकार अहमद पटेल हों या वयोवृद्ध नेता मोतीलाल वोरा, धाकड़ कांग्रेसी नेता दिग्विजय सिंह हों या जनार्दन द्विवेदी – सबकी सुबह से शाम यहीं कट रही है. कांग्रेस प्रवक्ता अभिषेक मनु सिंघवी अपनी सदाबहार मुस्कान के साथ किसी भी मसले–मसाइल को सुलझाने के लिए हर वक़्त हाज़िर हैं. वह पहले भी सहजता से उपलब्ध थे और आज भी हैं. अगरचे ये कि सोनिया गांधी और राहुल गांधी के निर्देशों के पालन में कोई कोताही नहीं की जा रही. राहुल गांधी की युवा ब्रिगेड की टोली के युवा सांसद और नेता बख़ूबी अपनी भूमिका का निर्वाह करते दिख रहे हैं. सचिन पायलट, मिलिंद देवड़ा, जितिन प्रसाद, ज्योतिरादित्य सिंधिया, नवीन जिंदल जैसे युवा नेता जो कांग्रेस मुख्यालय में झांकना भी गवारा नहीं करते थे वे हर दिन हाज़िरी लगा रहे हैं. हां, कांग्रेस प्रवक्ता मनीष तिवारी की दिनचर्या में ज़रूर कोई फ़र्क़ नहीं आया है. हालांकि न सिर्फ़ उत्तर प्रदेश, बल्कि पूरी हिंदी पट्टी में जिस तरीक़े से कांग्रेस के अंकुर फूटे हैं उससे चंद कांग्रेसी बौराए भी हुए हैं. पर राहुल के कठोर तेवर का ख़ौफ़ उन्हें बेसुध नहीं होने दे रहा. डर है कि कहीं संगठन से ही बाहर न कर दिए जाएं. प्रांगण में चहल–पहल है तो अंदर के कमरों में रणनीतियां बनाई जा रही हैं. भारी जनादेश मिलने से उत्साहित कांग्रेस नेता अब नई ऊर्जा के साथ ज़्यादा जवाबदेह और सक्षम सरकार बनाने की कवायद में है. कांग्रेस के नेताओं और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को इस बात का अंदाज़ा भली–भांति है कि अब जनता काम–काज के पुराने तरीक़ों को बर्दाश्त करने वाली नहीं. कांग्रेस के प्रदेश और केंद्रीय संगठन हमेशा से ही भ्रष्टाचार और चाटुकारिता की बीमारी से ग्रस्त रहे हैं. कांग्रेस के महासचिव रह चुके एक वरिष्ठ नेता बताते हैं कि राहुल गांधी का यह फरमान है कि इस व्याधि को संगठन की जड़ से ख़त्म करने की पुरज़ोर कोशिश की जाए. पार्टी में पद देने की बात हो या फिर मंत्रिमंडल में जगह पाने का मसला. योग्यता की ही अहमियत हो. यही वजह है कि राहुल की टीम के युवा नेताओं को मंत्रियों की पहली सूची में कोई जगह नहीं मिली. जो भी युवा नेता चुन कर आए हैं उन्हें उनकी क़ाबिलियत के हिसाब से मंत्रिमंडल के दूसरे विस्तार में जगह मिलेगी. कांग्रेस को मिले भारी जनादेश ने यह बात साबित कर दी कि राहुल के उन कामों का फ़ायदा कांग्रेस को ज़बरदस्त तरीक़े से मिला. कांग्रेस नेता जनार्दन द्विवेदी बताते हैं कि कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी ने साफ तौर पर अपने सभी मंत्रियों–नेताओं और गठबंधन के साथियों को निर्देश दे रखा है कि वे सभी

मिल कर देश में नया राजनीतिक और सामाजिक परिवेश तैयार करें. ताकि जनता की बढ़ती उम्मीदों की चुनौती से कारगर तरीक़े से निपटा जा सके. सोनिया गांधी और मनमोहन सिंह फिलहाल सबसे ज़्यादा ज़ोर आर्थिक सुधार और बेहतर वित्तीय प्रबंधन पर दे रहे हैं. ताकि निवेश बढ़ सके, जिससे ग़रीबी दूर करने, रोज़गार के नए अवसर पैदा करने और ग्रामीण विकास में मदद मिल सके. 31 जुलाई तक बजट पेश कर देने की तैयारी है, जिसके ज़रिए यह कोशिश होगी कि पिछले पांच वर्षों की विकास दर को क़ायम रखा जा सके, ताकि अर्थव्यवस्था की स्थिति सुधर सके और देश वैश्विक वित्तीय मंदी की मार से बाहर आ सके. ऐसे औद्यागिक और आर्थिक विकास को प्राथमिकता दी जाए, जिसमें समाज के हर वर्ग–विशेष की भागीदारी हो. ख़ासकर ग़रीब तबके की. प्रधानमंत्री ने कांग्रेस के सभी नेताओं से यह बात बड़े ही साफ शब्दों में कही है कि यह सभी की ज़िम्मेदारी है कि वे देश के आधारभूत ढांचे के विकास के लिए क़दम उठाएं. मुख्यालय में अपने ढेर सारे चाहने वालों से घिरे बैठे कांग्रेस नेता दिग्विजय सिंह की चमकती आंखें बगैर कुछ कहे भी उनकी प्रसन्नता बता देती हैं. वह बताते हैं कि कांग्रेस की अब एक ही मंशा है कि भारत को 2020 तक विकसित देशों की क़तार में खड़ा करने की हर मुमकिन कोशिश की जाए. और यह काम कांग्रेस न सिर्फ़ अपने शासन के जरिए करेगी, बल्कि अपने संगठन की मदद से भी करेगी. राहुल गांधी जो तमाम अनुरोधों के बावजूद सरकार में कोई मंत्री पद नहीं लेना चाहते और प्रधानमंत्री बनने के लिए ख़ुद को अयोग्य बताते हैं, वह इसलिए क्योंकि वह कांग्रेस पार्टी के संगठन को ज़मीनी स्तर पर बेहद मज़बूत बनाना चाहते हैं. वह कांग्रेस कार्यकर्ताओं को यह साफ संदेश देना चाहते हैं कि पद महत्वपूर्ण नहीं होता, बल्कि पार्टी ज़रूरी होती है. कार्यकर्ताओं में यह संदेश चला भी गया है. राहुल का सपना यही है कि उनकी पहुंच देश के एक–एक प्रखंड तक हो. वह वहां जाएं. लोगों से मिलें. व्यक्तिगत स्तर पर आम आदमी की परेशानियों से वाक़िफ़ हों. और उनकी इसी योजना के लिहाज़ से पार्टी मुख्यालय के क्रियाकलापों और कार्यशैली में भी बदलाव लाए गए हैं. यहां अब राजनीति, पद, हानि–लाभ की बातों के बजाय गांवों ओर कस्बों की समस्याओं से जुड़ी बातों पर चर्चा होने लगी है. अब यहां दूसरी पार्टियों की ख़ामियों पर बहस करने की जगह नीतियों और उनके कार्यान्वयन पर बात की जाती है.

सरकार और संगठन के बीच बेहतर तालमेल से देश को स्वच्छ प्रशासन देने का भी अभिनव प्रयोग करने की राहुल गांधी की मंशा है. इसकी शुरुआत भी की जा चुकी है. अब जो भी व्यक्ति कांग्रेस का प्राथमिक सदस्य बनेगा, उसके बैकग्राउंड की छानबीन की जाएगी. तसल्ली होने के बाद ही उसे सदस्य बनाया जाएगा. भ्रष्टाचार और चाटुकारिता से मुक्त कांग्रेस बनाने की तरफ यक़ीनन यह पहला क़दम बेहद असरदार साबित होगा. इस योजना पर अमल शुरू करने का ही शायद यह नतीजा है कि कांग्रेस मुख्यालय का सारा नज़ारा बदला–बदला सा है. दोबारा सत्ता हासिल करने की बेइंतहा ख़ुशी है तो इस ख़ुशी को क़ायम रखने का जोश भी नज़र आ रहा है. कांग्रेस प्रवक्ता और पहली बार सांसद बने मनीष तिवारी कहते भी हैं कि यह जीत जनता ने महज़ इसलिए कांग्रेस की झोली में नहीं दी है कि वह सिर्फ़ पांच वर्षों तक देश की सेवा करे . बल्कि इसलिए यह मौका दिया है कि कांग्रेस एक बार फिर दशकों तक देश के विकास में अपना योगदान दे.

सोनिया गांधी के राजनीतिक सलाहकार अहमद पटेल हों या वयोवृद्ध नेता मोतीलाल वोरा, धाकड़ कांग्रेसी नेता दिग्विजय सिंह हों या जनार्दन द्विवेदी– सबकी सुबह से शाम यहीं कट रही है.

ruby .chauthiduniya@gmail.com

बहू के बाद अब बेटे सुखबीर बादल की चिंता

पं जाब के मुख्यमंत्री प्रकाश सिंह बादल फिलहाल चिंतामुक्त नहीं हुए हैं. बहू हरसिमरत कौर को लोकसभा में भेजने के बाद बेटे सुखबीर बादल की चिंता उन्हें सता रही है. उन्हें राज्य विधानसभा में लाने की चिंता बादल को सोने नहीं दे रही. राज्य के डिप्टी सीएम बने सुखबीर बादल को 22 जुलाई से पहले–पहले विधानसभा में चुनकर आना होगा. पर अभी तक सिग्नल कहीं से ग्रीन नहीं है. राज्य में फिलहाल जुलाई से पहले किसी विधानसभा क्षेत्र में चुनाव होने की संभावना नहीं है. संभावना जताई जा रही है कि सुखबीर बादल को विधानसभा में चुनकर नहीं आने की स्थिति में इस पद से इस्तीफा भी देना पड़ सकता है, क्योंकि पंजाब में विधान परिषद का प्रावधान नहीं है. पंजाब में अकाली दल–भाजपा गठबंधन की सरकार है. राज्य भाजपा के नेताओं की इच्छा के विपरीत सुखबीर बादल की ताज़पोशी जनवरी महीने में हो गई थी. उस समय भाजपा के स्थानीय नेताओं ने इस क़दम का ज़ोरदार विरोध किया था, लेकिन भाजपा के पीएम इन वेटिंग लालकृष्ण आडवाणी किसी भी सहयोगी को नाराज़ करने के मूड में नहीं थे. आख़िर सुखबीर बादल को डिप्टी सीएम बनाया गया. इससे पहले संगठन में विरोध के बावजूद सुखबीर बादल को पार्टी का अध्यक्ष बना दिया गया था. पर हाल ही में संपन्न हुए लोकसभा चुनावों में अकाली दल की स्थिति कमज़ोर हुई है. राज्य में आठ सीटों पर कांग्रेस की जीत हुई है और पांच सीट अकाली दल भाजपा गठबंधन के खाते में गई है. इनमें से चार सीट अकाली दल के खाते में है. अभी तक अकाली दल सुप्रीमो प्रकाश सिंह बादल की चिंता अपनी बहू और सुखबीर बादल की पत्नी हरसिमरत कौर बादल को जिताने की थी. बड़ी मुश्किल से बेड़ा पार लगा. बाकी लोकसभा क्षेत्रों की चिंता छोड़ अकाली दल ने भटिंडा सीट पर ज़ोर लगाया. हरसिमरत कौर बादल एक लाख वोटों से जीतीं. जीत इसलिए महत्वपूर्ण थी कि यहां पर मुक़ाबला बादल परिवार के धुर विरोधी पूर्व मुख्यमंत्री कैप्टन अमरिंदर सिंह के बेटे रणइंदर सिंह से थी. अब समस्या काफी विकट है. सुखबीर बादल को विधानसभा में पहुंचने के लिए सुरक्षित सीट तो मिल सकती है, लेकिन जुलाई से पहले राज्य में चुनाव की संभावना ही नहीं दिख रही. राज्य में एक विधानसभा सीट बनूड़ फिलहाल ख़ाली है. यह सीट राज्य के सहकारिता मंत्री कैप्टन कंवलजीत सिंह की दुर्घटना में मौत हो जाने से ख़ाली हुई है. जबकि दो और सीटें गुरदासपुर की काहनुवान सीट और फिरोज़पुर की जलालाबाद सीट ख़ाली होनी है. काहनुवान के विधायक प्रताप सिंह बाजवा गुरदासपुर से लोकसभा में पहुंच गए हैं. वह कांग्रेस प्रत्याशी थे, जबकि जलालाबाद के विधायक शेर सिंह गुबाया फिरोज़पुर से लोकसभा में पहुंच गए हैं. वह अकाली दल के टिकट पर जीत गए थे. राज्य विधानसभा के सचिव वेदप्रकाश के अनुसार बनूड़ विधानसभा सीट ख़ाली होने की सूचना चुनाव आयोग को भेजी जा चुकी है. अभी चुनाव का नोटिफिकेशन नहीं हुआ है. जबकि जलालाबाद सीट और काहनुवान सीटों के विधायकों के इस्तीफे भी उनके पास नहीं पहुंचे हैं. जैसे ही इस्तीफे पहुंचेंगे विधानसभा से सूचना चुनाव आयोग को भेज दी जाएगी. वेद प्रकाश के अनुसार, सुखबीर बादल को 22 जुलाई से पहले राज्य विधानसभा मे चुनकर आना होगा. राजनीतिक प्रेक्षकों का मानना है कि सुखबीर बादल के लिए सबसे सुरक्षित सीट जलालाबाद होगी. इस सीट पर लोकसभा चुनाव में अकाली दल उम्मीदवार शेर सिंह गुबाया को तीस हज़ार से अधिक वोटों की बढ़त मिली, जबकि बनूड़ सीट पर ख़तरा है. यह सीट कैप्टन अमरिंदर सिंह की पत्नी परनीत कौर के लोकसभा क्षेत्र पटियाला में पड़ती है. इस सीट पर हाल ही में संपन्न हुए लोकसभा चुनाव में परनीत कौर को अच्छी लीड मिली. फिर दुर्घटना में मौत के शिकार हुए मंत्री कैप्टन कंवलजीत सिंह के बेटे जसजीत सिंह बन्नी ने पिता की मौत के दो दिन बाद ही सुखबीर बादल के ख़िलाफ़ बग़ावत कर दी थी. पार्टी से इस्तीफा देने का ड्रामा उन्होंने रचा और काफी मुश्किल से उन्हें मनाया गया. वह ख़ुद इस सीट के दावेदार हैं. अगर अकाली दल उनका टिकट काट कर सुखबीर बादल को चुनाव लड़ाने का फ़ैसला लेता है तो जसजीत बन्नी बग़ावत कर कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ सकते हैं. उनके पूर्व मुख्यमंत्री कैप्टन अमरिंदर सिंह से अच्छे संबंध हैं. इन परिस्थितियों में तो 22 जुलाई से पहले चुनाव की संभावना काफी कम लगती है.

संजीव पांडेय
feedback.chauthiduniya@gmail.com

आसान नहीं है अकाली दल भाजपा गठबंधन की राह

लो कसभा चुनावों के बाद अब पंजाब में अकाली दल–भाजपा गठबंधन में टूट पड़ने की संभावना बढ़ रही है. भाजपा नेताओं के तल्ख़ी भरे बयान इसके गवाह हैं. राज्य में शहरी इलाक़ों में भाजपा का आधार घटा है और हिंदू वोट बैंक वापस कांग्रेस की तरफ खिसका है. इसके बाद ही राज्य भाजपा के नेता तीखे बयान दे रहे हैं. उधर, अकाली दल इस हार के लिए भाजपा के केंद्रीय नेतृत्व को ज़िम्मेदार ठहरा रहा है. चुनावों के परिणामों ने भाजपा की हालत ज़्यादा पतली की है. लोकसभा चुनावों में भाजपा अपने जीते हुए 19 विधानसभा इलाक़ों में से 17 में हारी है. यह भाजपा के लिए गंभीर चिंतन का विषय है. इसके लिए कुछ लोग जहां भाजपा के मंत्रियों और नेताओं को ज़िम्मेदार मान रहे हैं, वहीं ख़ुद भाजपा अध्यक्ष इसके लिए राज्य सरकार की नीतियों को ज़िम्मेदार मानते हैं. राज्य भाजपा के अध्यक्ष राजिंदर भंडारी के अनुसार गठबंधन सरकार के कामकाज से शहरी मतदाता ख़ुश नहीं था. इसलिए भाजपा को सबसे ज़्यादा नुकसान हुआ है.

स्थिति यह थी कि राज्य के प्रदेश अध्यक्ष राजिंदर भंडारी के इलाक़े में भी भाजपा हारी. यह भी एक तथ्य है कि सरकार में भागीदार बने भाजपा कोटे के पांचों मंत्रियों मनोरंजन कालिया, मास्टर मोहनलाल, लक्ष्मीकांता चावला, स्वर्णाराम और तीक्ष्ण सूद के इलाक़े से भाजपा–अकाली दल गठबंधन के उम्मीदवारों को करारा झटका लगा. राज्य के उद्योग मंत्री मनोरंजन कालिया के विधानसभा क्षेत्र जालंधर सेंट्रल से अकाली उम्मीदवार हंसराज हंस 10 हजार वोटों से पीछे रहे. राज्य के वन मंत्री तीक्ष्ण सूद के चुनाव क्षेत्र होशियारपुर से भाजपा उम्मीदवार सोम प्रकाश 10832 वोटों से पीछे रहे. जबकि अमृतसर लोकसभा सीट से चुनाव जीते नवजोत सिंह सिद्धू को राज्य की स्वास्थ्य मंत्री लक्ष्मीकांता चावला के विधानसभा इलाके में सात हज़ार वोटों की हार मिली. वहीं गुरदासपुर से चुनाव हारे फिल्म स्टार विनोद खन्ना को राज्य के परिवहन मंत्री मास्टर मोहनलाल के विधानसभा क्षेत्र पठानकोट से 5100 वोटों से हार मिली. 2007 में संपन्न हुए विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को 44 सीटें, अकाली दल को 48 सीटें और भाजपा को 19 सीटें मिली थीं. अकाली दल–भाजपा गठबंधन को मिलाकर 67 सीटें मिली थीं. लेकिन अब लोकसभा चुनावों के समीकरण को देखा जाए तो कांग्रेस ने जहां 67 विधानसभा हलकों में अपनी बढ़त बनाई है, वहीं अकाली दल ने 48 विधानसभा क्षेत्रों में बढ़त बनाई है. भाजपा तो अपनी जीती हुई 19 सीटों में से सिर्फ़ दो पर बढ़त बनाए रख सकी. अकाली दल के लिए ख़ुशी की बात है कि जिस मालवा में अकाली दल को विधानसभा चुनावों में हार मिली थी वहां इस बार वे अच्छा प्रदर्शन करने में कामयाब रहे हैं. भटिंडा लोकसभा सीट की दस में से सात विधानसभा क्षेत्रों में अकाली दल ने बढ़त बनाई, जबकि फरीदकोट लोकसभा की दस में से आठ विधानसभा क्षेत्रों में अकाली दल ने बढ़त बनाई है. विधानसभा चुनाव–2007 में यहां पर कांग्रेस ने अकाली दल पर बढ़त बना ली थी. चुनाव के बाद ही चुनाव परिणामों को देखते हुए संगरूर से चुनाव हारे अकाली दल उम्मीदवार सुखदेव सिंह ढींढसा ने भाजपा पर हमला बोला. वैसे, अगले दिन ही अकाली दल के दबाव में ढींढसा ने अपने बयान को वापस ले लिया. इधर भाजपा नेता भी इस हार के लिए खुल कर सरकार की नीतियों को ज़िम्मेदार ठहरा रहे हैं. प्रदेश भाजपा अध्यक्ष राजिंदर भंडारी के अनुसार चंडीगढ़ में जल्द ही हार की समीक्षा की जाएगी. हालांकि कुछ भाजपा नेता पंजाब के भाजपा कोटे के मंत्रियों की आपसी लड़ाई को भी इस हार के लिए ज़िम्मेदार ठहरा रहे है.

संजीव
feedback.chauthiduniya@gmail.com

कांग्रेस को सत्ता मिली है जनादेश नहीं

भाजपा को अपने चाल, चरित्र और चिंतन को सुधारना पड़ेगा, ताकि सिर्फ़ एक समुदाय के वोट पर ही उसे बुरी तरह निर्भर नहीं रहना पड़े. साथ ही भाजपा को ख़ुद को कांग्रेस की कमज़ोर कार्बन कॉपी बनने से रोकना होगा, ताकि जनता दोनों दलों के बीच का फ़र्क़ साफ़-साफ देख सके. अटल बिहारी वाजपेयी के कारण उसे जो लाभ मिला था, उसके ग़ायब हो जाने के कारण हुई मतों की क्षति की पूर्ति कुछ अन्य उपायों से करना होगा. *पार्टी विद अ डिफरेंस* के अपने दावे को भुला चुकी भाजपा को अपने बीच के भ्रष्टाचारियों को भगाना होगा, ताकि वह कांग्रेस से जनता को बेहतर लगे.

सुरेंद्र किशोर

हाल के लोकसभा चुनाव के नतीजों के विश्लेषण से यह साफ है कि कांग्रेस को इस चुनाव से आधी-अधूरी जीत ज़रूर मिल गई है, उसकी सरकार भी बन गई, पर उसे जनादेश मिलना अभी बाक़ी है. भारत में चुनाव नतीजों का इतिहास यह बताता है कि समाज से व्यापक समर्थन मिलने पर ही किसी दल या गठबंधन को स्पष्ट बहुमत यानी जनादेश मिलता है. समाज के एक छोटे हिस्से के मतों के इधर से उधर होने से अधूरा बहुमत मिलता है. ऐसा ही अधूरा बहुमत 1991 में भी कांग्रेस को मिला था और इस बार भी इस दल को ऐसा ही बहुमत मिला है.

हां, आने वाले दिनों में कांग्रेसी सरकार अपने किसी चौंकाने वाले काम के जरिए अगले चुनाव में अच्छा ख़ासा जनादेश भी प्राप्त कर सकती है. पर इसके लिए जो हिम्मत चाहिए, वह फ़िलहाल कांग्रेस नेतृत्व व सरकार में दिखाई नहीं पड़ रहा है. इंदिरा गांधी ने 1969 और 1971 के बीच में जो कुछ चौंकाने वाले काम किए, उसके कारण जनता ने उन्हें 1971 के लोकसभा चुनाव में जनादेश दे दिया था. जनादेश यानी पूर्ण व आरामदायक बहुमत. यह और बात है कि उन्होंने इस जनादेश का सदुपयोग नहीं किया. फिर भी सोनिया-मनमोहन क्या इंदिरा वाली हिम्मत दिखा सकेंगे? आज देश को इसी तरह की हिम्मत चाहिए.

हाल में संपन्न लोकसभा चुनाव के नतीजे से यही लगता है कि इसमें भाजपा से तीन प्रतिशत वोट निकल कर कांग्रेस में चला गया है और कांग्रेस को सत्ता तक एक बार फिर पहुंचने में मतों के इसी स्थानांतरण ने ही निर्णायक भूमिका अदा कर दी. ज़ाहिर है कि ये वोट मुख्यत: ब्राह्मण वोट हैं. कुछ अन्य तत्व भी इस चुनाव में प्रभावी रहे, पर तीन प्रतिशत मतों के स्थानांतरण की राजनीतिक परिघटना साफ नज़र आ रही है. अटल बिहारी वाजपेयी के कारण यही वोट कभी कांग्रेस से छिटक कर भाजपा में चला गया था, जो वापस कांग्रेस में इस बार लौट गया.

इस दौरान उत्तर प्रदेश में बसपा से भी ब्राह्मण वोट हटा और इसीलिए बसपा को उत्तर प्रदेश में लोकसभा क्षेत्रों के तहत आने वाले विधानसभा क्षेत्रों में से सिर्फ़ 100 में ही इस बार बढ़त मिली. 2007 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में दो सौ से अधिक सीटों पर बसपा की जीत हुई थी. वह जीत मुलायम के यादव-ठाकुर गठजोड़ के ख़िलाफ़ दलित-ब्राह्मण गठजोड़ की जीत थी. ऐसी जीत कमज़ोर व काफी हद तक अस्थायी जीत ही होती है. इससे राष्ट्रीय स्तर पर पूर्ण बहुमत नहीं मिलता, भले राज्य स्तर पर कुछ दिनों के लिए मिल जाए. हालांकि अब ज़ाहिर है कि मायावती का राजनीतिक भविष्य भी अनिश्चित हो गया है. इसी तरह मात्र एक ख़ास जाति या संप्रदाय के अधिकतर वोट इधर से उधर खिसक जाने के कारण मिली जीत निर्णायक जीत नहीं होती.

मंदिर आंदोलन की पृष्ठभूमि में बढ़ी ताक़त के कारण भाजपा को 1998 में जीत ज़रूर मिली, पर उसे लोकसभा में पूर्ण बहुमत नहीं मिला. मंदिर आंदोलन सर्वजन समाज को प्रभावित करने वाला मुद्दा नहीं था, पर *ग़रीबी हटाओ* जैसे सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय के नारे के कारण इंदिरा गांधी की कांग्रेस को 1971 में लोकसभा में पूर्ण बहुमत मिल गया था. यह और बात है कि इंदिरा जी ने इस जनादेश का सदुपयोग नहीं किया. इस तरह के कुछ और उदाहरण भी हैं.

अब ज़रा मौजूदा लोकसभा के गठन के लिए हुए चुनाव के नतीजों का विश्लेषण करें. 2004 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को देश में 26.40 प्रतिशत मत मिले और उसे 145 सीटें मिलीं. इस बार उसे 29.67 प्रतिशत मत मिले, तो 206 सीटें मिलीं. भाजपा को 2004 में 22.20 प्रतिशत मत मिले थे. उसे तब 138 सीटें मिलीं थीं. इस बार उसका वोट घटकर 19.29 प्रतिशत रह गया, जिससे लोकसभा में उसकी सीटों की संख्या घट कर 116 रह गई. यानी कांग्रेस का क़रीब तीन प्रतिशत वोट बढ़ गया. भाजपा का इतना ही वोट घट गया. यानी यह वोट एक दल से निकल कर दूसरे दल में चला गया.

यानी अधिकतर ब्राह्मण मतदाताओं को अटल बिहारी वाजपेयी के बदले इस बार नेहरू परिवार के युवा नेता राहुल गांधी का सहारा मिल गया. हालांकि यहां यह कहना सही नहीं होगा कि इस देश के सारे ब्राह्मण मतदाता इसी आधार पर मतदान करते हैं. पर हर जाति के अनेक लोगों को अपनी जाति के किसी नेता को प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री पद पर पहुंचते हुए और इस पर बैठे हुए देखकर अच्छा लगता है. याद रहे कि भले मनमोहन सिंह इस देश के प्रधानमंत्री हैं, पर कौन नहीं जानता कि असली सत्ता का केंद्र तो अनौपचारिक रूप से नेहरू-इंदिरा परिवार यानी सोनिया-राहुल गांधी ही हैं. यदि कांशीराम उत्तर प्रदेश को ब्राह्मणवाद का पालना कहा करते थे तो इसी परिवार को देखकर. यह भला कौन भूल सकता है कि जवाहर लाल नेहरू आज़ादी के बाद राजा गोपालाचारी को देश का राष्ट्रपति बनवाना चाहते थे. ख़ुद प्रधानमंत्री और उप राष्ट्रपति के पद पर डॉ. राधाकृष्णन का नाम तय था ही. इसी अतिवादिता को भी मुद्दा बना कर मध्य जातियों ने जातीय आधार पर अपने-अपने दल बनाए और राजनीति से शुचिता, शालीनता और सदाचार का लोप होने लगा. इससे शालीन ब्राह्मणों सहित हर जाति के अच्छे लोगों को कष्ट हुआ.

चुनावों में आज़ादी के बाद से ही एक साथ कई तत्व हावी रहते हैं. जातिवाद भी इसमें एक तत्व है, पर हर बार जातिवाद ही सबसे अधिक हावी नहीं होता. पर कुछ-कुछ तो होता ही है. यदि दो राजनीतिक पक्षों में कम ही मतों से फ़ैसला होना है तो एक छोटा तत्व भी निर्णायक भूमिका अदा कर देता है. यहां तक कि अस्सी के दशक में जब वी.पी.सिंह बोफोर्स घोटाला व दूसरे घोटालों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाकर और मंत्री पद को लात मार कर लोकसभा के चुनाव अभियान का नेतृत्व कर रहे थे तो सारे देश के ठाकुरों के एक बड़े हिस्से के मन में गुदगुदी पैदा हो गई थी. इनमें से अधिकतर ठाकुरों ने बोफोर्स के सवाल पर कम बल्कि अपनी जाति के किसी व्यक्ति को देश के सर्वोच्च पद पर बैठने की संभावना के कारण जनता दल को अधिक वोट दिए. ऐसा नहीं कि वी.पी.सिंह सिर्फ ठाकुरों के वोट से ही प्रधानमंत्री बने, पर इस वोट ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की. जब इसी वी.पी.सिंह ने मंडल आयोग की सिफ़ारिशें लागू कर दीं तो अधिकतर ठाकुर मतदाताओं ने 1991 के लोकसभा चुनाव में जनता दल के ख़िलाफ़ वोट दे दिया.

हाल के चुनाव में यहां तीन प्रतिशत ब्राह्मण मतों के एक दल से दूसरे दल में ट्रांसफर की चर्चा इसलिए की जा रही है, ताकि संबंधित राजनीतिक दलों और चुनाव विश्लेषकों को सही नतीजे पर पहुंचने में सुविधा हो. यदि एक ख़ास समुदाय के वोट के इधर से उधर हो जाने से ख़ास तरह के चुनाव नतीजे आते हैं, तो इस स्थिति में यह कहा जा सकता है कि यह मनमोहन सिंह सरकार की नीतियों की जीत तो कतई नहीं है. यानी दोनों दलों को अगली बार लोकसभा चुनाव में निर्णायक जीत हासिल करने के लिए अलग से काफी कुछ करना पड़ेगा. भाजपा को अपने चाल, चरित्र और चिंतन को सुधारना पड़ेगा, ताकि सिर्फ़ एक समुदाय के वोट पर ही उसे बुरी तरह निर्भर नहीं रहना पड़े. साथ ही भाजपा को ख़ुद को कांग्रेस की कमज़ोर कार्बन कॉपी बनने से भी रोकना होगा, ताकि जनता दोनों दलों के बीच का फ़र्क़ साफ-साफ देख सके. अटल बिहारी वाजपेयी के कारण उसे जो लाभ मिला था, उसके ग़ायब हो जाने के कारण हुई मतों की क्षति की पूर्ति कुछ अन्य उपायों से करना होगा. *पार्टी विद अ डिफरेंस* के अपने दावे को भुला चुकी भाजपा को अपने बीच के भ्रष्टाचारियों को भगाना होगा, ताकि वह कांग्रेस से जनता को बेहतर लगे.

इधर कांग्रेस को महंगाई से पीड़ित जनता को वास्तव में राहत दिलानी होगी. तरह-तरह के आतंकवाद के ख़िलाफ़ और दोनों तरह की सांप्रदायिकताओं के ख़िलाफ़ समान रूप से कार्रवाई करनी पड़ेगी. इंदिरा गांधी हिंदू और मुस्लिम सांप्रदायिक तत्वों के ख़िलाफ़ समान रूप से कार्रवाई करती थीं. शायद इसीलिए उनके समय में दोनों तरह की सांप्रदायिकताएं काबू में थीं.

आर्थिक उदारवाद की मनमोहन नीति के कारण देश में बढ़ रही अमीर-ग़रीब की खाई को पाटने के लिए कांग्रेस ने कोई ठोस क़दम नहीं उठाया तो तीन प्रतिशत प्रवासी मत फिर पंछी की तरह उड़ जाएंगे. क्योंकि भाजपा के पास डॉ. मुरली मनोहर जोशी को आडवाणी की जगह नेता के रूप में पेश कर देने में कोई अधिक समय नहीं लगेगा. तब राहुल गांधी के मुक़ाबले जोशी जी काफी दमदार साबित हो जाएंगे. हालांकि इस बीच कांग्रेस सरकार ने 1969 की इंदिरा गांधी की तरह कोई बड़ी लकीर खींच दी तो उसे सिर्फ़ इस प्रवासी मतों पर ही निर्भर नहीं रहना पड़ेगा. उसे व्यापक समर्थन मिल जाएगा. सत्ता के पास लोगों को चौंकाने वाले काम करने की ताक़त होती है. एक ताक़त तो यह भी है कि केंद्र सरकार स्विस बैंक में पड़े भारत के लोगों के काले धन को वापस कर ले. इस तरह के कुछ और काम हो सकते हैं. सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों के जरिए नीतीश कुमार ने किस तरह महाबली लालू प्रसाद को बिहार में बौना बना दिया, वह अनुकरणीय है. पर इसके लिए यह ज़रूरी है कि नेता में ईमानदारी और दृढ़ता हो.

इस बार के लोकसभा चुनाव में विभिन्न दलों को मिले मतों के विश्लेषण से यह साफ है कि जो दल सर्वजन से संबंधित मुद्दों को उठाएगा, उसे ही लोकसभा में पूर्ण बहुमत मिलेगा. मतदान के इस पैटर्न के कुछ अपवाद भी हो सकते हैं, पर आम तौर पर पहले भी इस देश में ऐसा ही होता रहा है. इस चुनाव परिणाम का यह भी एक नसीहत है. इसे राजनीतिक दलों को देशहित में स्वीकार करना चाहिए. यदि कोई निर्णायक सरकार केंद्र में होती तो अब तक महिला आरक्षण विधेयक को वह किसी न किसी तरीक़े से संसद से पास करा कर आधी आबादी की तत्काल सहानुभूति हासिल कर लेती. ठीक इसी तरह बैंक राष्ट्रीयकरण और प्रिवी पर्स की समाप्ति के जरिए थोड़े समय के लिए इंदिरा गांधी ने ग़रीबों की सहानुभूति हासिल कर ली थी.

यही नहीं, हाल के दिनों में बिहार में अति पिछड़ों और महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान करके नीतीश कुमार ने उन लोगों का इस चुनाव में भारी समर्थन हासिल कर लिया. वैसे केंद्र के सामने सिर्फ़ महिला आरक्षण का ही मामला नहीं है. इस तरह के कई मामले हैं, जिनके जरिए वह सर्वजन हिताय कर सकती है. इसी देश के राष्ट्रीयकृत बैंकों के खरबों रुपए बड़े-बड़े अमीर लोगों के यहां दसियों साल से बाक़ी हैं और केंद्र सरकार इन डिफाल्टरों के नाम भी प्रकाशित करने की हिम्मत नहीं कर रही है. इन रुपयों से इस ग़रीब देश में न जाने कितनी विकास योजनाएं चलाई जा सकती हैं! मनमोहन सरकार आतंकवाद के मोर्चे पर फेल रही है. इसका एक छोटा उदाहरण यहां प्रस्तुत है. मुंबई में जब ताज होटल पर गत साल आतंकी हमला हुआ तो दिल्ली से एन.एस.जी. कमांडो को मुंबई भिजवाने में साढ़े आठ घंटे लग गए थे. हाल में यह ख़बर आई है कि एन.एस.जी. कमांडो को कम से कम समय में एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाने का जो वादा देश से केंद्र सरकार ने मुंबई कांड के बाद किया था, उसे इस महीने तक भी पूरा नहीं किया जा सका है. यानी जनता ने आतंकवाद से लड़ने में सफलता पाने को लेकर कांग्रेस को वोट नहीं दिया है. यही हाल महंगाई का है. वह चरम पर है. इधर मतदान हो रहा था और उधर उपभोक्ता वस्तुओं के दाम बढ़ रहे थे. यानी दाम घटाने के लिए भी कांग्रेस को मत नहीं मिले. इसी तरह कई अन्य मुद्दों पर जनता के बड़े हिस्से ने केंद्र की कांग्रेस सरकार को विफल माना. फिर भी कांग्रेस को इस बार अधिक सीटें क्यों मिलीं? एकमात्र कारण यही लगता है जो ऊपर कहा गया है. यानी प्रवासी मतों का अटल से राहुल में ट्रांसफर. इस पर कांग्रेस को इतराने की ज़रूरत नहीं है.

नए केंद्रीय मंत्रिमंडल की सामाजिक संरचना को देखने से भी लगता है कि कांग्रेस पार्टी एक बार फिर उसी तरह की भूल कर रही है, जिस तरह की भूल उसने भूतकाल में की है. ऐसी भूलों से ही देश में जाति आधारित क्षेत्रीय दल उभरे हैं. ऐसे दलों से शालीन जाति ब्राह्मण को सर्वाधिक कष्ट हुआ है. अब जब जाति पर आधारित क्षेत्रीय दलों के अवसान का दौर शुरू हो चुका है, उसे पूर्ण रूप से ध्वस्त कर देने के लिए ऐसे सामाजिक समूहों को कांग्रेस सरकार द्वारा तरजीह मिलनी चाहिए थी, जिनके बल पर क्षेत्रीय दल उभरे या फिर कभी उभर सकते हैं. इस देश का यह दुर्भाग्य रहा है कि वैसे क्षेत्रीय दलों के, जिनकी रजनी कोठारी ने कभी तारीफ़ की थी, एजेंडे में नैतिकता, सुशासन और विकास के लिए कोई जगह ही नहीं है. हालांकि कुछ क्षेत्रीय दल ज़रूर इसके अपवाद हैं. क्षेत्रीय दलों के लिए सत्ता, पैसा, परिवार और पार्टी ही सब कुछ है.

एक तरफ़ कांग्रेस लालू प्रसाद और मुलायम सिंह यादव को तिरस्कृत करे और दूसरी ओर एक ख़ास सवर्ण जाति से केंद्रीय मंत्रिमंडल को भर दे, तो वैसी स्थिति में एक बार फिर लालू-मुलायम को मज़बूत होने से भला कौन रोक सकता है. लालू प्रसाद से लड़कर उन्हें उन्हीं के दांव से कैसे चित किया जा सकता है, यह कोई नीतीश कुमार से सीखे. पर नीतीश कुमार जैसा नेता उत्तर प्रदेश में तो है नहीं. नीतीश कुमार या फिर नवीन पटनायक जैसा नेता उत्तर प्रदेश में खोजना पड़ेगा. अन्यथा कांशीराम के शब्दों में उत्तर प्रदेश कभी ब्राह्मणवाद का पालना स्थल रहा, तो कांशी विरोधियों के शब्दों में बाद में उत्तर प्रदेश और बिहार की राजनीति माफियाओं, देशद्रोहियों, अपराधियों और घोर जातिवादियों का पालना स्थल बन गया. हालांकि कांग्रेस और भाजपा भी अपराधियों की शरणस्थली हैं, पर इन राष्ट्रीय दलों में सुधरने की क्षमता अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है. इस चुनाव नतीजों से सबक़ लेकर ये दोनों ही दल ख़ुद को सुधार सकते हैं.

सभी फोटो-***प्रभात पाण्डेय***

इस बार के लोकसभा चुनाव में विभिन्न दलों को मिले मतों के विश्लेषण से यह साफ है कि जो दल सर्वजन से संबंधित मुद्दों को उठाएगा, उसे ही लोकसभा में पूर्ण बहुमत मिलेगा. मतदान के इस पैटर्न के कुछ अपवाद भी हो सकते हैं, पर आम तौर पर पहले भी इस देश में ऐसा ही होता रहा है. इस चुनाव परिणाम का एक नसीहत यह भी है.

पहली बार डरे हुए हैं कॉमरेड

गंगेश मिश्र

देश के वामपंथी इतिहास में यह पहला मौका है जब कॉमरेड डरे हुए हैं. लोकसभा चुनाव के परिणामों ने उन्हें अंदर तक हिला कर रख दिया है. पश्चिम बंगाल में पुराने से लेकर नया कार्यकर्ता तक मान रहा है कि कम्युनिस्टों का खेल सचमुच ख़त्म हो गया है. इसकी पुष्टि चुनाव परिणाम आने के हफ्ते भर बाद 24 मई को पश्चिम बंगाल में हुई दो घटनाएं भी करती हैं. एक, सिंगुर में वामपंथियों की करारी हार का जश्न मनाने उमड़ा जनसैलाब. दो, हंगामेदार रही माकपा की राज्य समिति की बैठक. हंगामे का आलम यह था पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य को कोई सुनने को तैयार नहीं था.लाचार और विवश भट्टाचार्य पूरी बैठक में अपने लिए एक और अवसर मांगते रहे. लेकिन बुद्धदेव पर मुख्यमंत्री पद छोड़ने का दबाव बढ़ता जा रहा है. पार्टी के भीतर ही नहीं, बाहर भी. भाकपा ने तो माकपा से कह दिया है कि वह राज्य में 2011 में होने वाले विधानसभा चुनाव से पहले बुद्धदेव भट्टाचार्य को बदले. इसके लिए उसने बाक़ायदा प्रस्ताव भी पास किया है. भाकपा का मानना है कि बुद्धदेव विधानसभा चुनाव में जीत दिलाने वाला चेहरा नहीं रह गए हैं.

इस बीच, विचारधाराओं की पार्टी होने से माकपा में विचारों का ज़बर्दस्त दौर चल रहा है. नई दिल्ली स्थित गोपालन भवन (मुख्यालय) से लेकर कोलकाता और तिरुवनंतपुरम तक माकपा में इस बात पर घोर मंथन चल रहा है कि चुनावी रणनीति कैसे सिर के बल खड़ी हो गई. लोकतंत्र है तो चुनाव और हार-जीत लगी ही रहेगी. माकपाई इसे मन से स्वीकार भी करते हैं. पिछली लोकसभा में वामदलों की संख्या 61 थी, जो इस बार घटकर 24 रह गई है. इनमें से भी माकपा के हिस्से मात्र 16 सांसद हैं. यह एक नया और नकारात्मक कीर्तिमान है. लोकसभा में इससे पहले माकपा की सबसे कम सीटें 1967 में थीं. तब भी वह 19 सीटें जीतने में सफल रही थी. पिछले 20 वर्षों में ऐसा पहली बार हुआ है कि केंद्र की सरकार में किसी भी वाम दल की कोई भूमिका नहीं है. दिल्ली में माकपा कार्यालय से लेकर भाकपा, आरएसपी और फॉरवर्ड ब्लॉक के कार्यालयों में इन दिनों एक अजीब सी मुर्दनी छाई हुई है.पार्टी कार्यालयों में वर्षों से समर्पित होकर काम करने वाले कार्यकर्ता जब स्वागत करते हैं, तो चेहरे पर जबरिया लाई गई मुस्कान अपने आप बहुत कुछ कह देती है. वैसे वे निराश अवश्य हैं, लेकिन इस आस से भी बंधे हैं कि इस झटके के बाद वाममोर्चा के नेताओं को ज़मीनी हक़ीक़त का अहसास अवश्य हो जाएगा. सीख के लिए ऐसा झटका लगना ज़रूरी था. माकपा कार्यालय-गोपालन भवन-में लोगों को ज्योति बसु की ऐसे समय में बहुत याद आ रही है. नाम न छापने की शर्त पर पश्चिम बंगाल के रहने वाले एक बुज़ुर्ग कार्यकर्ता कहते हैं कि सुरजीत के बाद ज्योति बसु को माकपा महासचिव न बनाना दूसरी ऐतिहासिक भूल रही. वह ज़मीन से जुड़े नेता थे. वह चुनाव लड़ने और जीतने वाले नेता थे. उनके मुताबिक, हमारा नया नेतृत्व आदर्श की बात करता है, लेकिन यथार्थ छोड़ कर. मार्क्स ने कहा था-चीज़ों का बाहरी ढांचा, रूप और प्रकृति पूरी तरह एक जैसी ही होती तो सारे विज्ञान बेकार हो जाते. कहने का मतलब यह कि वामपंथी नेता टीवी चैनलों पर तो बहस करते रहे, लेकिन पश्चिम बंगाल सरकार किस तरह अपने मूल उद्देश्य से भटक कर जनविरोधी हो गई है और केरल में सरकार और संगठन की लड़ाई किस हद तक पहुंच गई, उस पर ध्यान ही नहीं दिया. उन्हें दोनों राज्यों की ज़मीनी हक़ीक़त का कभी अंदाज़ा ही नहीं रहा. वह एक ही डंडे से वामपंथी दलों से लेकर तीसरे मोर्चे तक को हांकते रहे.

वाम दलों के दफ़्तरों में पश्चिम बंगाल से जुड़े कार्यकर्ता अपने नेताओं से अधिक नाराज़ हैं. उनका मानना है कि बंगाल आज अस्सी प्रतिशत तक तृणमूली हो गया है. बीते रविवार को सिंगुर में तृणमूल की जीत का जश्न मनाने जैसा जनसैलाब उमड़ा, वह अपने आप में काफी कुछ कह गया. राज्य सरकार से अभी तक मुआवज़ा नहीं लेने वाले ग़रीब आज वामपंथियों की हार पर जिस तरह ख़ुश हो रहे हैं, उससे तय है कि 2011 में होने वाला विधानसभा चुनाव भी वामपंथी बुरी तरह हारेंगे. लेकिन, साथ ही वे इस आस से भी बंधे हुए हैं कि हार के विश्लेषण के बाद सब कुछ ठीक हो जाएगा. कूड़ों की सफाई हो जाएगी और पार्टी पहले से अधिक मज़बूत होकर सामने आएगी. इस संदर्भ में वे पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा भूमि सुधार क़ानून को ढंग से लागू करने के साथ-साथ भूमि अधिग्रहण संबंधी विवादित नीति में व्यापक परिवर्तन के संकेत का हवाला देते हैं.

माकपा कार्यकर्ताओं की मानें तो पार्टी दो खेमें में बंट चुकी है. प्रकाश करात समर्थक और विरोधी. नेतृत्व के प्रति आम कार्यकर्ताओं में आक्रोश किस हद तक है, इसका अंदाज़ा इसी से लग जाता है कि वे केरल के मुख्यमंत्री और माकपा के पुराने नेता वीएस अच्युतानंदन पर पार्टी विरोधी काम करने का आरोप लगाते हैं. आरोप है कि अच्युतानंदन समर्थकों ने राज्य में कांग्रेस को वोट दिए और दिलवाए. सिर्फ़ इसलिए कि माकपा की राज्य ईकाई के प्रमुख पी.विजयन से उनकी नहीं बनती. उधर, पश्चिम बंगाल के करात विरोधी कार्यकर्ता ज्योति बसु के समर्थक हैं. बसु समर्थक आज तक यह नहीं भूले हैं कि करात जैसे नेताओं की वजह से ही 1996 में बसु प्रधानमंत्री नहीं बन पाए थे. इतना ही नहीं, ज्योति बसु ने अंत-अंत तक यह समझाने की कोशिश की थी कि संप्रग से नाता न तोड़ा जाए. ऐसे कार्यकर्ताओं का तो यहां तक आरोप है कि नेतृत्व आज भी पुराने ढर्रे पर ही चल रहा है. वह आत्ममुग्ध है. पूर्व लोकसभा अध्यक्ष और माकपा से निष्कासित सोमनाथ चटर्जी ने इसीलिए नेतृत्व बदलने की वकालत की है. उनका मानना है कि जब से करात ने नेतृत्व संभाला है, तब से पार्टी की लगातार दुर्गति ही हुई है. इसलिए पार्टी को इस पर सोचना चाहिए और आवश्यक परिवर्तन करना चाहिए. लेकिन पार्टी के दूसरे बड़े नेता सीताराम येचुरी इससे सहमत नहीं हैं. उनका कहना है कि माकपा सामूहिक कार्य और व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी के सिद्धांत पर चलने वाली पार्टी है. अगर पार्टी हारती है तो इसकी ज़िम्मेदारी सब की होती है न कि किसी एक व्यक्ति विशेष की. करात समर्थकों की यही राय है. उनके मुताबिक, परमाणु करार पर सरकार विरोधी रुख़ और कांग्रेस व भाजपा से समान दूरी रखने का फ़ैसला पार्टी कांग्रेस ने लिया था, जिसे करात लागू कर रहे थे.पिछले साल मार्च-अप्रैल में कोयंबटूर कांग्रेस ने ही फ़ैसला लिया था कि पार्टी इसी लाइन पर चलेगी. इसके लिए करात अकेले ज़िम्मेदार नहीं थे. बहरहाल,पार्टी की केंद्रीय समिति की जून में बैठक होनी है, जिसमें हार की वजहों का विश्लेषण किया जाएगा. येचुरी के मुताबिक, करात के पद छोड़ने का मतलब होगा-ज़िम्मेदारी से बचना.

वैसे करात और येचुरी इसके लिए ज़रूर ज़िम्मेदार माने जाएंगे कि उन्होंने कांग्रेस और भाजपा विरोधी राजनीति के नाम पर तीसरे मोर्चे वाला आत्मघाती रास्ता चुन लिया.पार्टी कांग्रेस ने ऐसा करने को नहीं कहा था. इसलिए येचुरी ख़ुद मानते भी हैं कि अतीत में भाजपा की साथ रह चुकी पार्टियों के साथ गठबंधन गलती थी. बसपा, बीजद, अन्ना द्रमुक,टीडीपी और जद-एस जैसे दलों का राज्य से लेकर केंद्र तक में भाजपा के साथ गठबंधन रह चुका है. इसलिए इन पार्टियों के साथ खेला गया तीसरे मोर्चे का कार्ड पिट गया. तीसरे मोर्चे के कारण वाम मोर्चे के चाल,चरित्र और चेहरे पर सवालिया निशान लग गया. माकपा महासचिव प्रकाश करात और सीताराम येचुरी दोनों मानते हैं कि लोगों ने तीसरे मोर्चे को विश्वसनीय नहीं माना. वाम मोर्चे में भाकपा जैसे दूसरे घटक दल भी माकपा नेताओं के तौर-से काफी नाराज़ हैं. भाकपा, आरएसपी और फॉरवर्ड ब्लॉक के कार्यकर्ताओं की नज़रों में प्रकाश करात और बुद्धदेव भट्टाचार्य जिद्दी और अहंकारी हैं.जबकि ज़रूरत विनम्र राजनीति की है. भाकपा नेता दबी ज़ुबान में बताते हैं कि उन्होंने चुनाव से पहले ही बता दिया था कि पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य का अहंकार सबको ले डूबेगा. सिंगुर और नंदीग्राम मामले में मुख्यमंत्री का व्यवहार अहंकार से भरा था. सर्वहारा की राजनीति करने वाली पार्टी के नेता दोषपूर्ण भूमि अधिग्रहण नीति पर अड़े रहे. नतीजा सामने है, जनता ने उनकी जड़ ही उखाड़ दी. इतना ही नहीं,तीसरे मोर्चे को लेकर करात ने जिस तरह की आक्रामक नीति अपनाई, वह हवा-हवाई ही थी. वह न तो व्यावहारिक थी और न ही विश्वसनीय. तीसरे मोर्चे के नेताओं का हाल देखिए कि चुनाव परिणाम आते ही उसके नेता कांग्रेस को समर्थन देने पहुंच गए. मायावती, देवगौड़ा जैसे नेताओं के साथ आप विचारधारा की राजनीति कैसे चला सकते हैं और जनता को कैसे समझा सकते हैं. इतना ही नहीं, वामपंथी उत्तर प्रदेश में प्रधानमंत्री के लिए मायावती का समर्थन करते थे, तो कर्नाटक में देवगौड़ा और तमिलनाडु में जयललिता का.इन विरोधी बातों पर केंद्रित प्रचार ने मतदाताओं पर नकारात्मक प्रभाव डाला. कांग्रेस और भाजपा पर वामपंथी जिस अवसरवादी राजनीति का आरोप लगाते रहे हैं, वही ख़ुद कर रहे थे.

यही कारण है कि आज वाम मोर्चे में ऊपर से लेकर नीचे तक घोर निराशा है. दोषारोपण में नेताओं की वरिष्ठता का भी ख़याल नहीं रखा जा रहा. लेकिन अच्छी बात यह है कि सभी वाम दलों के नेताओं के बीच परस्पर संवाद कायम है और वे लगातार सलाह-मशविरा भी कर रहे हैं. उनके बीच ज़ोरदार मंथन लगातार जारी है. ज़ाहिर है, मंथन में विष तो निकलेगा ही, अमृत भी निकल सकता है. वामपंथी सिद्धांत भी यही कहता है कि जो हाथ विध्वंस कर सकते हैं, वही नया निर्माण भी करते हैं.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

राजद में है मातम का माहौल

दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम. आज पूर्व रेल मंत्री की हालत बस ऐसी ही है. करारी हार का असर लालू यादव के सरकारी आवास 25 तुगलक रोड के साथ-साथ संसद भवन स्थित राजद के कार्यालय पर भी साफ नज़र आ रहा है. बिना लाग लपेट के कहें तो बस मुर्दनी छाई हुई है. भीड़-भाड़ की तो बात छोड़ ही दीजिए, जो कुछेक चेहरे नज़र आ रहे हैं वे भी बेरौनक. न तो काम-काज की सरगोशी है और न ही रुतबे की नुमाइश. जिस सरकारी आवास पर फरियादियों का हुज़ूम उमड़ता था आज वहां सहानुभूति के चंद शब्द कहने वालों का भी अकाल पड़ गया है. रेल मंत्री रहते सुरक्षा के इतने कड़े इंतज़ाम होते थे कि लालू से मिलना बेहद मुश्किल था. अब फिज़ा बिल्कुल बदली हुई है. लालू के ओहदे की धमक से इतराने वाले मुलाज़िम और लालू के खास होने का दंभ भरने वालों के तेवर बदल गए हैं. बेअदबी करना अपना हक़ समझने वाले अब सलीके से पेश आने लगे हैं. दीनदयाल उपाध्याय मार्ग पर बनने वाले राजद के दफ्तर का निर्माण कार्य रुक गया है. राजद के नेताओं की शक्ल तो ख़ैर, दिखती ही नहीं. लाज़िमी भी है. राजद अध्यक्ष लालू प्रसाद यादव के हाथ से पहले बिहार की सत्ता फिसली और अब केंद्र से भी बेदखल कर दिए गए. तमाम मशक्कतों के बावजूद उन्हें सरकार में शामिल नहीं किया गया. उनके उन्हीं साथियों ने उनकी मुखालफ़त की जो पिछली यूपीए सरकार में उनके गुण गाते नहीं अघाते थे. हालांकि लालू का विरोध करने वालों के पास इसकी भी वाजिब वजहें हैं. लोकसभा चुनाव के ऐन पहले तक हिंदुस्तान की सियासत के उफक पर ध्रुवतारा सरीखे चमक रहे राजद अध्यक्ष लालू प्रसाद यादव अब इस कदर हाशिए पर पड़े हैं कि आज राष्ट्रीय राजनीति में उनका कोई पुरसाहाल नहीं हैं. वह हैरान हैं. परेशान हैं. अपनी ग़लतियों को कोस रहे हैं. उस अहंकार पर लानतें भेज रहे हैं जब अपनी शानदार जीत के घोर मुग़ालते में उन्होंने यूपीए गठबंधन से अलग होकर चुनाव लड़ने का फ़ैसला किया था. अब उनके आसपास बहुत कुछ बदल गया है. उनके पास अब अपनी जड़ों की तरफ लौटने के अलावा और कोई रास्ता भी नहीं. लालू ने वापस बिहार की तरफ अपना रुख़ कर लिया है. कहते हैं कि अब फिर से बिहार में राजद को मज़बूत करेंगे. मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने अपनी विकास पुरुष की छवि को सरकारी कामकाज से साकार करने का जतन करके राज्य की जनता के बीच गहरी पैठ बना ली है. नीतीश ने महज़ तीन साल के अपने शासन में बिहार में सड़क, बिजली, पानी जैसी बुनियादी सुविधाओं पर इतना काम कर दिया है जो राजद के पंद्रह सालों के शासन काल में नहीं हुआ. ज़ाहिर है बिहार में भी लालू यादव की राह में हज़ार कांटे हैं. प्रधानमंत्री का सपना संजोने वाले लालू अब मंत्री भी नहीं रहे और अपने राज्य बिहार में भी उनकी जड़ें कमज़ोर हो चुकी हैं. मतलब यह कि राजनीति और सत्ता की राह पर सरपट भागने के बाद अब लालू और उनकी पार्टी राजद एक बार फिर संघर्ष के दौर में हैं. कुछ ही वक़्त पहले राजद ने राष्ट्रीय पार्टी का तमगा मिलने का जश्न मनाया था. पर जनता की दी हुई पटकनी के बाद राजद को एक बार फिर राजनीति की ज़मीन पर पैर जमाने की जद्दोज़हद करनी पड़ेगी. वैसे लालू प्रसाद ज़ाहिर तो यही कर रहे हैं कि आम आवाम का आदेश उन्होंने सिर माथे लिया है. पर उनके वजूद पर हावी बेचैनी साफ नज़र आती है. यही छटपटाहट राजद के दूसरे नेताओं में भी दिखती है. प्रेम गुप्ता, जयप्रकाश यादव, कांति सिंह, तस्लीमुद्दीन, फातमी, अखिलेश सिंह सरीखे पूर्व केंद्रीय मंत्री आज भी बड़ी मुश्किल से इस बात पर यक़ीन कर पा रहे हैं कि वे अब देश की सत्ता में भागीदार नहीं हैं. सभी जानते हैं कि राजद की यह दुर्गति उसके नेताओं के बड़बोलेपन, गुमान और जनता की अनदेखी करने के कारण हुई. हैरानी की बात तो यह है कि ऐसा सबक़ सीखने के बावजूद लालू प्रसाद यादव यह मानने को अभी भी तैयार नहीं कि उनसे या उनकी पार्टी के नेताओं से भूल हुई है. वह रेल मंत्री के तौर पर किए गए अपने कामों की वही फेहरिस्त सामने रख देते हैं जो उन्होंने जाने कितनी बार गिनवाई है. कहते हैं कि यह सब समय का फेर है, इसलिए हार गए. हां इतना बदलाव ज़रूर आया है कि फिलहाल लालू प्रसाद किसी की बखिया नहीं उधेड़ रहे. चिंतन-मनन की स्थिति है और भविष्य को संभालने की जुगत करने की फिक्र है. मंशा यही कि देश न सही कम से कम बिहार की जनता का भरोसा एक बार पाने का जतन तो हर हाल में किया जाए. पर यक्ष प्रश्न है कि कैसे? लालू यादव रोज़ अपने ख़ास सलाहकारों और सिपहसालारों के साथ बैठ मगज़मारी कर रहे हैं. जो कहर टूट पड़ा है उससे निकलने का रास्ता तलाश रहे हैं. वह फिर से गांव-गंवई की बातें कर रहे हैं. कस्बों-प्रखंडों में राजद के फैलाव की कोशिशें होने लगी हैं. अब्दुल बारी सिद्दीकी, श्याम रजक, रामकृपाल यादव आदि को यह ज़िम्मेदारी दी गई है कि वे राजद के असंतुष्ट नेताओं का मान-मनौव्वल करें ताकी कम से कम पार्टी अंदरूनी कलह की शिकार बन कर बिखर न जाए. एक तो लोकसभा चुनाव के वक्त ही टिकट पाने के नाम पर पार्टी में घमासान मचा था. और अब हर तरफ से बेआबरू होने के बाद तो पार्टी के कार्यकर्ता राजद के नाम का मुलम्मा भी उतार फेंकने पर आमादा हैं. बिहार विधान सभा के चुनाव में दो सालों से भी का कम समय बचा है. ज़ाहिर है, सत्ता के बाज़ीगर रहे लालू प्रसाद के लिए ये अग्नि परीक्षा के दिन हैं. जो कुछ भी करना है या पाना है वह बस इन्हीं दिनों में. लालू को पता है कि सवाल अब सत्ता का नहीं बल्कि राजद के वजूद का है. अगर अब भी नहीं संभले और ग़लतियों से सबक़ नहीं लिया तो अभी तो गहरी शिकस्त मिली है, कल को कोई नामलेवा भी न बचे.

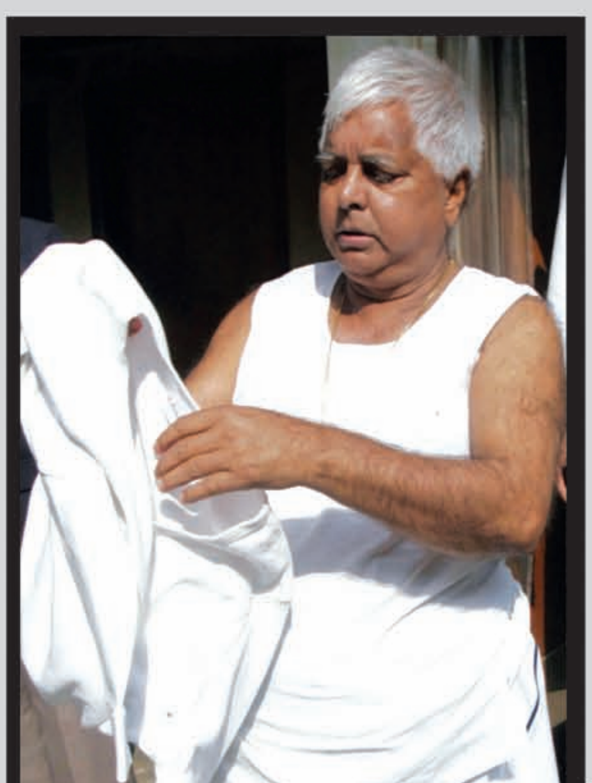

सभी फोटो-प्रभात पाण्डेय

राजद अध्यक्ष लालू प्रसाद यादव के हाथ से पहले बिहार की सत्ता फिसली और अब केंद्र से भी बेदखल कर दिए गए. तमाम मशक्कतों के बावजूद उन्हें सरकार में शामिल नहीं किया गया. उनके उन्हीं साथियों ने उनकी मुखालफ़त की जो पिछली यूपीए सरकार में उनके गुण गाते नहीं अघाते थे.

रूबी अरुण
ruby.chauthiduniya@gmail.com

क्या गुल खिलाया मुस्लिम पार्टियों ने?

ए.यू.आसिफ़

इस बार के लोकसभा चुनाव में लगभग दो दर्जन मुस्लिम पार्टियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपने-अपने लगभग 100 उम्मीदवार विभिन्न क्षेत्रों में खड़े किए थे. आज़ादी के पश्चात यह अब तक की सबसे बड़ी संख्या थी, लेकिन जब चुनाव परिणाम आए तो केवल इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग के दो और ऑल इंडिया मजलिसे इत्तेहादुल मुसलमीन एवं असम यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट के एक-एक उम्मीदवार ही कामयाब हुए. वैसे यह अलग बात है कि कुछ विशेषज्ञ जम्मू-कश्मीर की नेशनल कांफ्रेंस को भी इन्हीं मुस्लिम पार्टियों की पंक्ति में रखकर देखते हैं. ज्ञात हो कि इस बार नेशनल कांफ्रेंस के चार उम्मीदवार भी चुनाव जीतकर लोकसभा में पहुंचे हैं. यह बात भी उल्लेखनीय है कि जम्मू-कश्मीर की एक और पार्टी पीडीपी समेत इन मुस्लिम पार्टियों को छोड़कर बाकी सभी दलों के उम्मीदवार हार गए और कुछ पार्टियों का तो वजूद भी ख़तरे में पड़ गया.

दक्षिण भारत में तमिलनाडु की मणीधुनया मक्कल कांची (एमएमके) (जवहरुल्लाह) एवं केरल की पीपल्स पापुलर फ्रंट (ई अबु बकर) या उत्तर भारत में उत्तर प्रदेश की उलेमा काउंसिल एवं पीस पार्टी ऑफ इंडिया समेत एक दर्जन पार्टियों में से इन सभी ने अलग-अलग कुछ हज़ार की संख्या में वोट प्राप्त किए. उत्तर प्रदेश में उलेमा काउंसिल ने कुल सात उम्मीदवार खड़े किए थे. आजमगढ़ में बटला कांड के नाम पर उसके उम्मीदवार डॉ. जावेद अख्तर को 59,270 वोट मिले, पर बसपा के अकबर अहमद डंपी द्वारा 1,98,609 वोट काट ले जाने के कारण मुस्लिम वोट विभाजित हो गया. सपा के दुर्गा प्रसाद यादव ने भी 1,23,844 सेकुलर वोट हासिल किए. इन सब का नतीजा यह निकला कि भाजपा के रमाकांत यादव अकेले 2,47,648 वोट पाकर सफल हो गए. इसी तरह जौनपुर में दिल्ली के सामाजिक कार्यकर्ता एवं चिकित्सक डॉ. तसलीम अहमद रहमानी ने 87,397 वोट पाए. यहां बसपा के धनंजय सिंह विजयी हुए. लालगंज में इसके चंद्रराम सरोज उर्फ चंदू को 8777 वोट मिले. यहां भी बसपा के डॉ. बलराम जीते. अंबेडकर नगर में डॉ. इफ्तेख़ार ने केवल 5,915 वोट पाकर बसपा के डॉ. राकेश पांडे को विजयी बना दिया. लखनऊ, कानपुर एवं मछलीशहर में भी कुछ हज़ार ही वोट इसके उम्मीदवारों को मिले. पूरे राज्य में सात सीटों पर उलेमा काउंसिल मात्र 2,17,444 वोट ही बटोर पाई और उसके दो उम्मीदवार लालगंज एवं जौनपुर में चौथे नंबर पर रहे.

जहां तक उत्तरप्रदेश की दूसरी महत्वपूर्ण मुस्लिम पार्टी-पीस पार्टी ऑफ इंडिया-का मामला है, तो उसने भी इस राज्य में कई उम्मीदवार खड़े किए थे. उसके उम्मीदवारों में सबसे अधिक वोट डुमरियागंज एवं गोंडा में इनामुल्लाह चौधरी एवं आशिक अली को क्रमश: 79,820 एवं 73,235 वोट मिले. इन दोनों इलाक़ों में कांग्रेस के जगदंबिका पाल 2,29,872 (डुमरियागंज) और बेनीप्रसाद वर्मा 1,55,675 (गोंडा) वोट से सफल हुए. पीस पार्टी के इन दोनों उम्मीदवारों के बाद तो देवरिया में सफायत अली को 28842, फैज़ाबाद में नुसरत कुद्दुसी को 24,893, सालेपुर में इज़हार को 10,958, सहारनपुर में हाजी मोहम्मद तौसीर को 9,214, मुज़फ्फरनगर में अब्दुल अज़ीज अंसारी को 6,537 व सुल्तानपुर में मोहम्मद उमर को 2,328 वोट मिले.

एमएमके ने तमिलनाडु में चार उम्मीदवार मैदान में उतारे थे. सभी हारे, जिनमें हैदर अली को चेन्नई में 13,160, उमर ई को पोलाची में 13,933 एवं सलीमुल्लाह खां एस को रामनाथपुरम में 21,439 वोट प्राप्त हुए. इंडियन यूनियन मुस्लिम ने केरल के अलावा आंध्र प्रदेश में सिकंदराबाद से अब्दुल सत्तार मुजाहिद (18,730 वोट), असम में बारपेटा से मोहम्मद दिलेर खां, बिहार में उजियारपुर से मसूद हसन (2210 वोट), मध्यप्रदेश में खंडवा से हबीब सुरूर (1529 वोट), महाराष्ट्र में जालना से डॉ. दिलावर मिर्ज़ा बेग (2486 वोट), कल्याण से खां अयाद (859 वोट), पुणे से बागबान जावेद क़ासिम (606 वोट), उत्तरप्रदेश में संभल से हाजी रशीद हुसैन (4,826 वोट), अलीगढ़ से अख्तर, फिरोज़ाबाद से राहत अफरोज़ एवं उन्नाव से राशिद कमर के साथ प्रयोग किया और बुरी तरह मुंह की खाई. दिवंगत डॉ. अब्दुल जलील फरीदी की मुस्लिम मजलिस, जिसकी कभी उप्र विधानसभा

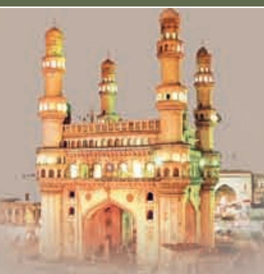

एवं लोकसभा में नुमाइंदगी होती थी, दोनों स्थानों पर बुरी तरह हारी. इसके अध्यक्ष डॉ. ख़ान मोहम्मद आतिफ तो अपनी ज़मानत तक बचा नहीं पाए. सच तो यह है कि आईयूएमएल, एयूडीएफ और एआईएमआई को छोड़कर दो-तीन मुस्लिम पार्टियां भले भविष्य में अपनी कोई जगह बना लें, परंतु अधिकतर का भविष्य अंधकारमय महसूस होता है. यह अलग बात है कि देश में मौजूद राजनीतिक पार्टियों से निराशा के कारण ही मुस्लिम पार्टियां बनती हैं. उनमें से अधिक निराश होकर कुछ नहीं कर पाती हैं. आईयूएमएल तो विभाजन के बाद ही दक्षिण भारत, महाराष्ट्र और केरल में वजूद में आ गई और फली-फूली भी. केरल विधानसभा में उसके कभी 19 सदस्य हुआ करते थे, इस समय मात्र आठ सदस्य हैं. इसके अलावा एक ग़ैर मुस्लिम विधानसभा सदस्य भी हैं. लोकसभा में इस बार इसके दो प्रतिनिधि पहुंचे हैं. केरल में यह एक शक्तिशाली राजनीतिक पार्टी है. राज्य एवं केंद्र में इसका कांग्रेस से तालमेल है. इसी प्रकार आंध्र प्रदेश में एआईएमआईएम है, जिसके यहां पांच एमएलए एवं एमएलसी के अलावा दर्जनों काउंसिलर एवं कॉरपोरेटर हैं. आज़ादी के बाद ही से इसका हैदराबाद से लोकसभा में आमतौर से प्रतिनिधित्व होता रहा है, यह भी आंध्रप्रदेश की एक मुख्य एवं संगठित पार्टी है. एयूडीएफ तो जमीयतुल उलेमा नेता मौलाना बदरुद्दीन अजमल कासमी द्वारा 2006 में विधानसभा चुनाव से पूर्व बनाई गई थी. उसने इस चुनाव में अपने दस उम्मीदवारों को विधानसभा भेजकर और 9.07 प्रतिशत पोट प्राप्त करके अपना अस्तित्व मनवाया था. इसके पश्चात 2008 में 48 जिला परिषद सीटों पर सफलता प्राप्त करके उसने अपना मत प्रतिशत 14.54 कर लिया और अब इस बार 15वीं लोकसभा चुनाव में उसके अध्यक्ष धुबरी सीट से सफल हुए. इसके अलावा दो क्षेत्रों में नंबर दो एवं बाकी छह क्षेत्रों में तीसरे नंबर पर रही. उसने इस बार 17.10 प्रतिशत वोट प्राप्त किया और दो राष्ट्रीय पार्टी-कांग्रेस एवं भाजपा-के बाद तीसरी सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी बन गई. अजीब बात तो यह है कि यह असम में इन दोनों राजनीतिक पार्टियों के लिए चुनौती बन गई है. इस बार तो कांग्रेस का प्रतिनिधित्तव असम में घट कर 2004 की नौ की तुलना में तीन ही रह गया है. अपनी चार पुरानी सीटों गुवाहाटी, सिलचर, धुबरी एवं तेजपुर को वह इस बार बचा भी नहीं पाई और नौगांव एवं मंगलाडोई को एयूडीएफ द्वारा काफी वोट काटे जाने के कारण भाजपा के हाथों खो बैठी.

दरअसल कांग्रेस इन्हीं कारणों से एयूडीएफ को साथ लेकर चलना चाहती है. वह तो इसके विलय के भी हक़ में थी, पर चुनाव परिणाम के बाद मौलाना बदरुद्दीन अजमल कासमी दिल्ली आए और कांग्रेस नेताओं से बातचीत करके विलय का नहीं, बल्कि यूपीए सरकार को बाहर से समर्थन देने का फ़ैसला सुनाकर चले गए. एयूडीएफ को कांग्रेस की इच्छानुसार आगे बढ़ने पर मंत्री पद भी मिल सकता था, लेकिन उसके सामने 2011 का विधानसभा एवं आगामी लोकसभा चुनाव ज़्यादा अहम दिखा. वह नहीं चाहती है कि दिवंगत एफ गुलाम उस्मानी वाला हश्र उसका भी हो जाए. ज्ञात रहे कि गुलाम उस्मानी, जिनका पिछले महीने देहांत हो गया, का भी राजनीतिक पटल पर कई साल पूर्व इसी तरह उभार हुआ था. उनकी यूनाइटेड माइनॉरिटी फ्रंट (यूएमएफ) एक राजनीतिक शक्ति बनकर सामने आया था, परंतु कांग्रेस में विलय के बाद उनका करिश्मा समाप्त हो गया. ऐसा महसूस होता है कि एयूडीएफ असम में दूसरी बुनियादों पर आईयूएमएल, एआईएमआईएम या बसपा की तरह एक राजनीतिक शक्ति के तौर पर उभर रही है. और इस बार का लोकसभा चुनाव उसके लिए सांकेतिक सिद्ध हुआ है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

सांच को नहीं लगी आंच

बिनायक सेन को ज़मानत

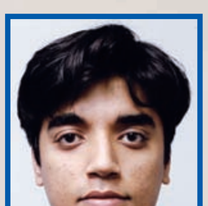

पावस नीर

आख़िरकार वह हो ही गया, जिसकी मांग 22 नोबल पुरस्कार विजेता, एमनेस्टी इंटरनेशनल, मानवाधिकार आयोग और भारत के हज़ारों लोग दो सालों से कर रहे थे. डॉ. बिनायक सेन को ज़मानत मिल गई. दो साल से छत्तीसगढ़ की जेल में बंद बिनायक सेन को सर्वोच्च न्यायालय ने ज़मानत दे दी. मानवाधिकार कार्यकर्ता और पेशे से डॉक्टर बिनायक सेन पिछले दो सालों से नक्सली होने के आरोप में जेल में बंद थे. उन पर आरोप था कि वह नक्सलियों के साथ सहानुभूति रखते थे, उनकी विचारधारा को आगे बढ़ाते थे, हरेक तरह से यानी सैद्धांतिक और व्यावहारिक तौर पर नक्सलियों की मदद करते थे. छत्तीसगढ़ सरकार ने उन पर नक्सलियों के पत्र-व्यवहार में मदद का आरोप लगा कर मुक़दमा दर्ज़ किया था. इसी वर्ष 14 मई को बिनायक सेन की गिरफ़्तारी के दो साल पूरे हो गए थे, इस फ़ैसले से उनकी रिहाई के लिए आंदोलन कर रहे लोगों को राहत मिली है. यह ज़मानत स्वास्थ्य कारणों के आधार पर दी गई है, ताकि बिनायक सेन वेल्लूर जाकर इलाज करा सकें. छत्तीसगढ़ सरकार इस ज़मानत का भी विरोध कर रही थी. अब सवाल यह है कि क्या सचमुच बिनायक सेन इतने ख़तरनाक हैं कि स्वास्थ्य कारणों से भी

> **सवाल यह भी है कि अगर बिनायक सेन सचमुच नक्सली हैं तो आख़िर क्यों देश-विदेश के लोग उनकी रिहाई के लिए सड़कों पर उतरे? इनमें कई बड़े नाम हैं जो अपनी-अपनी विधाओं के बड़े जानकार हैं, फिर क्यों ये सभी लोग भारत के सबसे पिछड़े राज्यों में काम कर रहे एक डॉक्टर के लिए एकजुट हो गए हैं?**

फोटो-*पीटीआई*

उनकी ज़मानत से सरकार को आपत्ति थी? बिनायक सेन कोई आउटलॉ नहीं हैं. एक डॉक्टर हैं. राजनीति की समझ रखते हैं और सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं. जब 1981 में वह छत्तीसगढ़ आए थे, तो यह महज़ मध्य प्रदेश का एक पिछड़ा हिस्सा था. न यहां स्वास्थ्य सुविधाएं थीं न कोई जन सुविधा. बड़े उद्योग और उनमें काम करने वाले ग़रीब मज़दूर थे और विकास से कोसों दूर भोले-भाले आदिवासी. इन्हीं के साथ बिनायक सेन ने काम शुरू किया. 1990 में श्रमिक नेता शंकर गुहा नियोगी के साथ खान मज़दूरों के लिए काम करने लगे. अपनी पत्नी के साथ वह एक ग़ैर-सरकारी संगठन *रूपांतर* चलाते थे. पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पीयूसीएल) के महासचिव बने. इन्हीं के सुझाव पर सरकार ने *मितानिन* नाम का स्वास्थ्य कार्यक्रम शुरू किया. फिर ऐसा क्या हुआ कि वही बिनायक सेन आज सरकारी नज़रों में ख़तरा बन गए हैं.

क्या यह महज़ इसलिए है कि उन्होंने न्यायालय के आदेश के तहत जेल में बंद नक्सली नेता नारायण सान्याल का इलाज़ किया था? या इसलिए कि उन्होंने सरकारी सलवा जुडुम के अत्याचारों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठा दी थी? क्या वह सचमुच में अपराधी हैं? या उनका अपराध बस इतना था कि वह व्यवस्था के ख़िलाफ़ हो गए? बिनायक सेन की गिरफ़्तारी ग़ैर-क़ानूनी गतिविधि (रोकथाम) क़ानून के तहत हुई है. उन पर जनसुरक्षा क़ानून का मामला दर्ज़ है. विडंबना देखिए, यह वही क़ानून था जिसके अनुचित प्रयोग के ख़िलाफ़ डॉ. सेन ने आवाज़ बुलंद की थी. दरअसल छत्तीसगढ़ में नक्सलियों के फैलाव को रोकने के लिए जिस सलवा जुडूम को खड़ा किया गया था, वह ख़ुद ही आतंक का जरिया बन गया. सलवा जुडूम के अधिकारियों (एसपीओ) को कई विशेषाधिकार मिले हुए हैं, जिसका प्रयोग भोले-भाले आदिवासियों को परेशान करने, लोगों को लूटने और सरकारी सुविधाओं को हड़प करने के लिए हो रहा है. सलवा जुडूम के तहत हो रही इन्हीं ज़्यादतियों के ख़िलाफ़ बिनायक सेन ने बयान दिए थे. 14 मई 2007 को बिनायक सेन को गिरफ़्तार कर लिया गया. नवजात बच्चों का यह डॉक्टर रातों-रात राजद्रोही करार दे दिया गया. तो क्या सचमुच बिनायक सेन गुनहगार थे या उन्हें ज़्यादा सवाल पूछने की सज़ा मिली? क्या वह इसलिए पकड़ लिए गए क्योंकि रोगी के इलाज के अपने धर्म के साथ उन्होंने सवाल पूछने के अपने अधिकार का इस्तेमाल कर लिया था? क्या उनकी आवाज़ किसी को चुभ रही थी, जिसे ख़ामोश करने के लिए उन्हें हिरासत में डाल दिया गया.

सवाल यह भी है कि अगर बिनायक सेन सचमुच नक्सली हैं तो आख़िर क्यों देश-विदेश के लोग उनकी रिहाई के लिए सड़कों पर उतरे? इनमें कई बड़े नाम हैं जो अपनी-अपनी विधाओं के बड़े जानकार हैं. फिर क्यों ये सभी लोग भारत के सबसे पिछड़े राज्यों में काम कर रहे एक डॉक्टर के लिए एकजुट हो गए हैं? अगर डॉ. सेन सचमुच गुनाहगार हैं तो क्यों उन्हें गिरफ़्तारी के बाद भी स्वास्थ्य और मानवाधिकार के क्षेत्र में जोनाथन पुरस्कार मिला? इन सवालों के जवाब ज़रूरी है, लेकिन इनके जवाब न तो सरकार के पास हैं और न ही प्रशासन के पास. इनका जवाब अब समय ही लिखेगा.

जब न्यायालय में उनकी ज़मानत पर फ़ैसला हुआ तो सुनवाई कर रहे जस्टिस काटजू ने छत्तीसगढ़ सरकार के वकील की कहा कि उन्हें कुछ नहीं सुनना, वह सब जानते हैं. उम्मीद है जब डॉ. बिनायक सेन की बेगुनाही पर फ़ैसला होगा तब भी भारत का क़ानून सब जान-समझ कर ही फ़ैसला लेगा और वह फ़ैसला हमारी उम्मीदों को मरने नहीं देगा.

ख़ैर, अभी तो फौरी तौर पर उनको राहत मिल गई है. ख़ुशी का वक़्त है. फिलहाल तो हम बिनायक सेन का स्वागत कर सकते हैं. हमें उनके जैसे लोगों की ज़रूरत भी है.

pawas.chauthiduniya@gmail.com

तेलंगाना और दार्जिलिंग पर नहीं गली दाल

चंद्रशेखर राव और शांतिप्रिया

फोटो–पीटीआई

अलग तेलंगाना राज्य के गठन की मांग को लेकर सक्रिय राजनीति में इतराने वाले तेलंगाना राष्ट्र समिति प्रमुख के. चंद्रशेखर राव पहले ग़ैर–भाजपा ग्रैंड अलायंस के साथ चुनावी गठजोड़ के बाद भाजपा के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन से भी तालमेल बनाने का परिणाम भुगत कर अब चुनाव मैदान से बाहर हो चुके हैं.

आंध्रप्रदेश में विधानसभा और लोकसभा दोनों ही चुनावों में तेलंगाना राष्ट्र समिति (टी.आर.एस.) ने ग़ैर–भाजपा, ग़ैर–कांग्रेसी गठजोड़ों के घटकों से इसी मुद्दे पर चुनावी तालमेल किया कि अगर वे सत्ता में आए तो अलग तेलंगाना राज्य बनाएंगे. अपने शासनकाल में अलग तेलंगाना के विरोधी रह चुके तेलुगू देशम पार्टी (टी.डी.पी.) नेता चंद्रबाबू नायडू ने बाक़ायदा चुनाव घोषणापत्र में इसे शामिल किया. कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी ने तो तेलंगाना क्षेत्र में चुनाव प्रचार के दौरान कहा कि अलग तेलंगाना उनकी सरकार की पहली प्राथमिकता होगी. आंध्रप्रदेश के विभाजन के ख़िलाफ़ रही भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीएम) भी इसी मुद्दे पर चुनाव लड़ने को तैयार हो गई, जिन दोनों पार्टियों ने सबसे मज़बूत टीडीपी के साथ मिलकर ग्रैंड अलायंस बनाने में मुख्य भूमिका निभाई. इतने समर्थन के बावजूद टीआरएस संस्थापक चंद्रशेखर राव भाजपा के इस आश्वासन को दिमाग़ से निकाल नहीं पाए कि–भाजपा गठबंधन अगर सत्ता में आया तो 100 दिनों के अंदर तेलंगाना का बनना तय है. इसलिए वह राजग (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन) की लुधियाना रैली में शामिल हो गए, जो पंजाब में सत्तारूढ़ और भाजपा की सहयोगी शिरोमणि अकाली दल की ओर से अंतिम चरण के मतदान से पहले आयोजित की गई. राव ने कांग्रेस से सीधा बिगाड़ मोल नहीं लिया. ग़ैर–कांग्रेसी, ग़ैर–भाजपा गठजोड़ से सीटों का बंटवारा किया और भाजपा गठबंधन से तालमेल बनाए रखा. एक साथ दो–तीन नावों में पैर रखकर चुनावी नदी पार करने का टीआरएस प्रमुख का यह दिग्भ्रमित क़दम ग्रैंड अलायंस के किसी घटक को अच्छा नहीं लगा, भले ही किसी ने (यहां तक कि नायडू ने भी नहीं) कोई तीखी प्रतिक्रिया खुलकर व्यक्त नहीं की. घटक नेताओं ने सोचा कि तेलंगाना की जनता के चहेते राव के ख़िलाफ़ कोई टिप्पणी करना वहां के मतदाताओं की भावनाओं को ठेस पहुंचाना हो सकता है. लेकिन तेलंगाना के मतदाताओं ने राव के इस रवैये को पूरी तरह ठुकरा दिया. जिन मतदाताओं ने टी.आर.एस. को गठन (2000) के चार साल के अंदर वह हैसियत दे दी कि 2004 के लोकसभा और राज्य विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को अलग तेलंगाना राज्य बनाने की राव द्वारा रखी गई शर्तों पर चुनावी तालमेल करना पड़ा, उन्हीं मतदाताओं ने इस चुनाव में राव की लुटिया डुबोकर कांग्रेस को इतनी ऊंची पोजीशन पर लाकर बैठा दिया कि राव कुछ बोलने तक की स्थिति में नहीं हैं. लोकसभा में साथियों को भेजने की कौन कहे, राव अपनी सीट से भी बुरी तरह हारे. टीआरएस लोकसभा की मात्र दो सीटें और विधानसभा की मात्र दस सीटें जीत पाई. पिछले चुनाव में राव ने कांग्रेस के साथ सीटों का तालमेल करके तेलंगाना में विधानसभाओं की 119 में से 42 सीटें जीती और 17 लोकसभा में से 5 सीटें जीती. बाक़ी पर कांग्रेस को फ़ायदा पहुंचाया. इन दोनों पार्टियों ने मिलकर टीडीपी का सफ़ाया कर दिया जो एकीकृत आंध्रप्रदेश का नारा देकर तेलंगाना में वोट मांगने गई थी. इस बार तेलंगाना की जनता ने टी.डी.पी. वाला हाल टीआरएस का किया. चंद्रशेखर राव 2000 को नहीं भूले होंगे, जब केंद्र में सत्तारूढ़ भाजपा गठबंधन ने झारखंड, उत्तराखंड और छत्तीसगढ़ राज्यों का गठन किया और तेलंगाना को एजेंडे में भी नहीं रखा. इसी समय टीआरएस अस्तित्व में आई. आंध्रप्रदेश में चंद्रबाबू नायडू की सरकार होने के कारण उनकी मांग केंद्र तक नहीं पहुंची, क्योंकि नायडू तेलंगाना बनाने के पक्ष में नहीं थे और भाजपा गठबंधन को अल्पमत में आने से बचने के लिए नायडू के समर्थन की ज़रूरत थी. आज राव ने भाजपा के 100 दिनों के अंदर तेलंगाना गठन को कैसे गंभीरता से ले लिया और नायडू से कैसे गठजोड़ किया, यह तो उनसे ज़्यादा तेलंगाना के मतदाता बता सकते हैं. भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी ने हैदराबाद जाकर श्री राव को याद दिलाया कि अलग तेलंगाना राज्य का गठन सिर्फ़ भाजपा ही कर सकती है, जैसा उसने वर्ष 2000 में किया. चुनाव से पहले चंद्रशेखर राव भाजपा के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार लालकृष्ण आडवाणी और कांग्रेस सुप्रीमो सोनिया गांधी दोनों से मिले थे. 100 दिनों के अंदर तेलंगाना राज्य का गठन का आश्वासन देने वाली भाजपा का पूरे राज्य में लोकसभा और विधानसभा का खाता भी नहीं खुला. जिस कांग्रेस ने वर्ष 2004 के चुनाव में अलग तेलंगाना बनाने के वायदे पर चुनावी तालमेल किया और वायदे से मुकर जाने के कारण राव केंद्रीय मंत्रिमंडल से अलग हो गए, वही पार्टी इस राव को किस रूप में लेती है यह तो वक़्त बताएगा. 1970 के दशक में जिस तेलंगाना को चुनावी मुद्दा बनाने में चेन्ना रेड्डी जैसे कांग्रेसी महारथी पिछड़ गए, उसके पहले भी किसी को सफलता नहीं मिल पाई, वहां की जनता को जगाने वाले राव इस हालत में आ जाएंगे यह किसी ने नहीं सोचा था. भविष्य में तेलंगाना के मतदाताओं को विचलित राव की ओर मुख़ातिब होने से बचाने के लिए राज्य और केंद्र में यहां से जीते प्रतिनिधियों को मंत्रिमंडल में पर्याप्त जगह कांग्रेस ने दी है.

भाजपा का दूसरा चुनावी सपना अलग दार्जिलिंग बनाने का है, जो अब इसके लिए कठिन चुनौती है. अलग राज्य का दर्जा वाले चुनावी मैदानों में से दार्जिलिंग ज़रा अलग किस्म का है. क्योंकि इसमें कांग्रेस की पारी समाप्त होने के बाद भाजपा को अवसर मिला है. भाजपा के प्रमुख नेता जसवंत सिंह इसी वायदे पर भारी अंतर (2,53,000 से भी ज़्यादा) से दार्जिलिंग लोकसभा सीट जीते हैं. केंद्र में कांग्रेस गठबंधन की सरकार दोबारा बनी है और पश्चिम बंगाल में वाम मोर्चे की सरकार पहले से है, ये दोनों गठबंधन दो दशक से दार्जिलिंग को राज्य का दर्जा देने पर विचार करने का प्रलोभन देकर वहां से अपने उम्मीदवारों की जीत सुनिश्चित करते रहे हैं. जबकि यह मुद्दा उनके सरकारी या चुनावी एजेंडे में काम के रूप में कभी नहीं आया. इस चुनाव में कांग्रेस उम्मीदवार दावा नरबुला तीसरे नंबर पर रहे, जो पिछली बार जीते थे. सत्तारूढ़ वाम मोर्चे के जीबेश सरकार दूसरे नंबर पर आ गए. दार्जिलिंग राज्य पश्चिम बंगाल को काटकर बनना है, जहां इस लोकसभा चुनाव में तृणमूल कांग्रेस की ममता बनर्जी ने कांग्रेस और वाम मोर्चा दोनों को ठिकाने लगा दिया. सिर्फ़ अपने बलबूते पर लोकसभा की कुल 42 में 19 सीटें जीतने वाली ममता बनर्जी ने दार्जिलिंग के मामले में कभी रुचि नहीं ली और इस बार वह इस स्थिति में हैं कि राज्य का कोई अहम फ़ैसला कांग्रेस या वाम मोर्चे में से कोई भी उनकी मर्ज़ी के बग़ैर नहीं ले सकता. ममता बनर्जी अब वापस भाजपा गठबंधन की ओर देखेंगी, इसकी उम्मीद नहीं के बराबर है. उनकी नज़र 2011 में होने वाले राज्य विधान सभा चुनाव पर है, जिसमें वह वाम मोर्चा को सत्ता से बाहर करने की तैयारी में जुटी हैं. अगर कांग्रेस के साथ मिलकर ममता मुख्यमंत्री बनने में सफल हो जाती हैं तो उन्हें दार्जिलिंग के मामले में हर हाल में रुचि लेनी होगी.

जसवंत सिंह

दार्जिलिंग में अलग राज्य के लिए चले आंदोलन की नींव हिंसा की राजनीति पर टिकी है. 1980 के दशक में शुरू सुभाष घीसिंग के गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट (जीएनएलएफ) से लेकर विमल गुरूंग और रोशन गिरि द्वारा इसकी काट में गठित गोरखा जनमुक्ति मोर्चा (जीजेएम) तक की यही कहानी है. सुभाष घीसिंग जब समर्थ थे तो उनकी मदद से कांग्रेस और वाम उम्मीदवार जीतते थे. 2004 में कांग्रेस के दावा नरबूला उन्हीं के समर्थन से जीते थे. इन दोनों दलों के आश्वासन से ऊबा जीजेएम आज मज़बूत है और उसने भाजपा को जिताया है. कुछ ही समय पहले तक हिंसा का पर्याय माने जाने वाले सुभाष घीसिंग अब परिदृश्य से हट चुके हैं जिनकी दार्जिलिंग को संविधान की छठी अनुसूची में शामिल करने की कोशिश 2007 में संसद के शीतकालीन सत्र में सिर्फ़ भाजपा के विरोध के कारण विफल हो गई. सुभाष घीसिंग के ही रास्ते पर चलने वाले विमल गुरूंग की अलग राज्य से कम कुछ भी घोषित करने के गंभीर परिणाम की चेतावनी भाजपा के रुख़ से दमदार साबित हो गई. भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी की आपत्ति पर छठी अनुसूची में शामिल करने वाला 107वां संशोधन बिल पास नहीं हो पाया और जिस प्रवर समिति के पास भेजा गया उसकी अध्यक्ष थीं भाजपा की राज्यसभा सदस्य सुषमा स्वराज, जिन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा कि जीजेएम की आपत्तियों के मद्देनज़र बिल पर पुनर्विचार की ज़रूरत है. सुषमा भी लोकसभा में आ चुकी हैं और जीजेएम की बदौलत भाजपा को पहली बार दार्जिलिंग सीट जीतने का मौका मिला है जो पश्चिम बंगाल में इसका एकमात्र खाता है. इतना तो निश्चित है कि अब दार्जिलिंग तथा उसके आस–पास रोज़मर्रे की हिंसा, प्रदर्शन, धरना, बंद के लिए भाजपा को ज़िम्मेदार ठहराने में कांग्रेस और वाम मोर्चे को आसानी होगी, जिसके इलाक़ों को काटकर पूर्वी बंगाल में हिंसा की बदौलत अलग राज्य (कामतापुर, कूचबेहार) के लिए और भी आंदोलन चल रहे हैं. वाम मोर्चे की दार्जिलिंग जिला यूनिट के चुनाव संयोजक राज्य मंत्री अशोक भट्टाचार्य प्रचार के दौरान ही सांप्रदायिक और अलगाववादी ताक़तों को उकसाने का भाजपा पर आरोप लगा चुके हैं.

सुभाष घीसिंग

भाजपा के सपनों का अलग तेलंगाना और अलग दार्जिलिंग चंद्रशेखर राव तथा विमल गुरूंग किस रूप में देखते हैं, इसका जायज़ा अगले चुनाव से पहले लेना थोड़ा कठिन हो गया है.

शशिधर खान

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मिल सकता है आधी दुनिया को इंसाफ़

ज्योति मिर्धा, श्रुति चौधरी व मौसम नूर

फोटो–प्रभात पाण्डेय

पंद्रहवीं लोकसभा में महिला राजनीतिज्ञों का वह सपना साकार होने के आसार दिख रहे हैं, जिसके लिए उन्होंने लंबा इंतज़ार किया है. संसद में दस फीसदी का आंकड़ा पार करने वाली महिलाएं इस बार महिला आरक्षण विधेयक पारित करवाने का पूरा प्रयास करेंगी. इसके पारित होने की संभावना इसलिए भी है, क्योंकि कांग्रेस इस विधेयक का समर्थक होने का दावा करती रही है.

सरकारी नौकरियों में, ट्रेनों में, बसों आदि हर स्थान पर महिलाओं को 33 फीसदी आरक्षण मिल रहा है. हमारे पड़ोसी मुल्क बांग्लादेश की संसद में महिलाओं को 50 फीसदी आरक्षण प्राप्त है. स्वीडन की संसद में 349 सांसदों में से 164 यानी 47 फीसदी महिला सांसद हैं. कनाडा में 305 सांसदों वाले सदन में 65 यानी 21 फीसदी महिलाएं हैं और अमेरिका की संसद में भी 16.8 फीसदी महिलाएं हैं. लेकिन 543 सदस्यों वाली लोकसभा वाले दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत की यह विडबंना ही है कि चौदह लोकसभाओं के गठन के बाद इस बार यानी पंद्रहवीं लोकसभा में ही महिला सांसदों की संख्या 50 को पार कर पाई. संविधान लागू होने के लगभग 60 साल होने को हैं. इसके बाद भी आज की राजनीति में आधी आबादी को बराबरी का हक़ नहीं मिला है. इसका सबूत है अब तक की गठित लोकसभाओं में उनकी नगण्य संख्या.

15 वीं लोकसभा की तस्वीर कुछ अलग है. इस बार संसद में 52 महिला सांसदों की धमक होगी जो अब तक की सर्वाधिक संख्या है. इस बार जहां कांग्रेस की गिरिजा व्यास, राणी नराह, तेजस्विनी रमेश, प्रिया दत्त, मीनाक्षी नटराजन, जैसे अनुभवी चेहरे हैं वहीं श्रुति चौधरी, मौसम नूर व ज्योति मिर्धा जैसे युवा चेहरे भी हैं जो कुछ भी कर गुज़रने के जज़्बे के साथ संसद में पहुंची हैं. महिला विधेयक का पुरज़ोर समर्थन करने वाली सुषमा स्वराज भी संसद में होंगी. साथ ही विभिन्न दलों से शताब्दी रॉय, अनु टंडन और किरण माहेश्वरी भी अपने क्षेत्रों की दिग्गज मानी जाती हैं. यानी कुल मिलाकर संसद में महिलाओं की संख्या भले ही इस बार बहुत ज़्यादा न हो पर इस बार संसद में दखल देने वाली महिलाएं दमदार हैं, इसमें कोई शक़ नहीं है.

वैसे तो पूर्व प्रधानमंत्री एचडी देवगौड़ा के शासनकाल में महिला आरक्षण बिल पर सबसे पहले विचार किया गया, पर यह विचार सदन में दबकर ही रह गया. बाद में इसे एनडीए के शासनकाल में भाजपा ने ज़ोर–शोर से उठाया गया. भाजपा के इस विधेयक पर विपक्षी दलों ने तो असहमति जताई ही, एनडीए के घटक दलों ने भी सदन में इसका जमकर विरोध किया. वह दिन था और आज का दिन है, भाजपा की बोतल से निकले इस जिन्न पर राजनीति तो जमकर हुई, पर इन 13 वर्षों के लंबे अंतराल में इस पर आजतक कोई फ़ैसला नहीं हुआ है.

हुआ बस इतना कि हर दल अपने हिसाब से इस पर राजनीति करते रहे. किसी ने इस आरक्षण को 33 फीसदी से 10 फीसदी करने की बात कही, तो किसी ने 12 और कुछ दलों ने तो इस आरक्षण कोटे को ख़त्म कर देने की भी राय दे डाली.

और तो और, जो पार्टियां डंके की चोट पर इस विधेयक का समर्थन करती थीं उनकी प्रत्याशियों की फेहरिस्त में से महिलाओं के नाम सिरे से ग़ायब रहे.

फिर भी इस बार के चुनावों में 556 महिला प्रत्याशियों ने अपना भाग्य आजमाया, यानी पिछली बार की 345 की संख्या से ज़्यादा और संसद में पहुंचीं 52, जो अब तक की सर्वाधिक संख्या है. सुखद यह है कि इन सांसदों में सबसे ज़्यादा 19 कांग्रेस की हैं. महिला आरक्षण का बड़े ज़ोर–शोर से समर्थन करने वाली भाजपा की महिला सांसदों की संख्या 11 पर ही सिमट गई है. पिछड़े माने जाने वाले राज्य उत्तरप्रदेश से सबसे ज़्यादा 12 महिलाएं संसद में पहुंची हैं. ग़ौरतलब है कि अग्रणी माने जाने वाले राज्य केरल से एक भी महिला संसद तक नहीं पहुंच पाई है.

ख़ैर, महिला विधेयक के पारित होने की संभावना इसलिए भी बढ़ गई है, क्योंकि कांग्रेस के बड़े नेताओं को अक्सर यह कहते सुना गया है कि सोनिया गांधी महिला आरक्षण को लेकर काफी गंभीर हैं और इसे हर हाल में पास कराना चाहती हैं. साथ ही राजीव गांधी भी राजनीति में युवाओं के साथ–साथ महिलाओं की भी भागीदारी चाहते थे. इसके अलावा जो सबसे अहम वजह है, वह है कांग्रेस को मिलने वाले इसके दूरगामी फ़ायदे. अगर यह विधेयक पारित हो जाता है, तो लगभग 180 पुरुष सांसदों को अपनी सीटें गंवानी पड़ेंगी. यानी इसका सीधा–सा मतलब होगा कि धर्म और जातिगत आरक्षण जैसे मुद्दों पर राजनीति करने वाले दलों को दूसरे मुद्दे तलाशने होंगे. कांग्रेस चूंकि ख़ुद धर्मनिरपेक्ष दल है, इसलिए उसकी दिली तमन्ना तो यही होगी कि धर्म और जाति के मुद्दे छोटे पड़ जाएं. इससे होगा यह कि अगले लोकसभा चुनाव में कांग्रेस की स्थिति और भी मज़बूत होगी.

चूंकि यह एक संविधान संशोधन विधेयक है, इसलिए इसे एक तिहाई बहुमत मिलना आवश्यक है और इसीलिए यह अब तक मझधार में अटका पड़ा है. फ़िलहाल कांग्रेस बहुमत में न सही, पर बहुमत के इतने क़रीब है कि संसद में अपनी हर मांग पूरी कराने का दम रखती है.

बहरहाल, ग्राम पंचायतों में 33 फीसदी आरक्षण का नियम लागू है और यह इसी का परिणाम है कि शहरी महिलाओं की तुलना में आज ग्रामीण महिलाएं ज़्यादा मुखर नज़र आती हैं. ग्रामीण महिलाओं को यह हक़ दिलाने का श्रेय जाता है राजीव गांधी को. राजीव गांधी के युवाओं को आगे बढ़ाने के फंडे को अपनाकर ही कांग्रेस फिर से सत्ता में आई है. अब बारी है राजीव के दूसरे सपने को पूरा करने की, यानी महिलाओं को सत्ता में भागीदारी देने की. संभावना यही है कि भले ही कुछ समय और लगे पर कांग्रेस यह सुनहरा अवसर अपने हाथों से जाने नहीं देगी. यानी अब वह दिन दूर नहीं, जब दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र, भारत में भी महिला सांसदों की संख्या 10 फीसदी का आंकड़ा पार करेगी. 13 सालों के लंबे इंतज़ार के बाद, कांग्रेस ने आशा की एक किरण जगाई है, जो निश्चित तौर पर अमली जामा पहनेगी.

नीलम शुक्ला देवांगन

feedback.chauthiduniya@gmail.com

महिला राजनीतिज्ञों की राय

हमारी पूरी कोशिश होगी कि इस लोकसभा में महिला आरक्षण विधेयक पास हो जाए. अब समय आ गया है कि महिलाओं को उनका हक़ मिल जाना चाहिए.

–गिरिजा व्यास, *अध्यक्ष, राष्ट्रीय महिला आयोग*

चूंकि हमारी पार्टी सत्ता में नहीं है, इसलिए हम ज़्यादा कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं हैं. पर हां, अगर महिला विधेयक सदन में रखा जाता है तो भाजपा सरकार का समर्थन कर सकती है.

–सरोज पांडे, *भाजपा सांसद, दुर्ग, छत्तीसगढ़*

महिला आरक्षण विधेयक पारित होने से देश में महिला सशक्तीकरण को बल मिलेगा. सत्ता में महिलाओं की भागीदारी का सपना सच होगा. हमने इसी के मद्देनज़र सोनिया जी को विधेयक पर ध्यान देने को कहा है.

–डॉ. प्रभा ठाकुर, *अध्यक्ष, अखिल भारतीय महिला कांग्रेस*

विएना की आग से क्यों सुलगा पंजाब

विएना की घटना

23 मई को विएना के पंद्रहवें जिले के गुरुद्वारे में भारत से डेरा सचखंड के दो सिख गुरु संत रामानंद और संत निरंजन दास सभा करने पहुंचे. गुरु रविदास के विचारों पर प्रवचन के दौरान छह सिख पिस्टल और चाकुओं से लैस होकर सभा में घुस आए और भारत से आए गुरुओं पर हमला बोल दिया. गुरुओं को बचाने के लिए आए समर्थकों की हमलावरों से हाथापाई हुई, जिसमें क़रीब तीस लोग घायल हो गए. दरअसल हमलावर गुरु के भाषण का विरोध कर रहे थे और वे उन्हें सभा को संबोधित करने से रोकना चाहते थे. इस हमले में प्रवचन के लिए आए दोनों डेरा गुरु भी घायल हो गए, जिनमें गुरु संत रामानंद की अस्पताल में उपचार के दौरान मौत हो गई. वहीं दूसरे गुरु निरंजन दास की हालत अभी नाजुक तो है, लेकिन उनकी जान ख़तरे से बाहर है. विएना पुलिस के मुताबिक, गुरुद्वारे में हुए इस हमले को एक सोची-समझी साज़िश के तहत अंजाम दिया गया और हमालावरों का मक़सद सिख समुदाय और डेरा में पहले से चल रहे विवाद को एक बार फिर से तूल देने का था. दरअसल विएना में तीन हज़ार से ज़्यादा सिख रहते हैं और इनमें से एक तिहाई सिख दलित हैं. जहां भारत में सिख और डेरा विवाद गहराता जा रहा है, वहीं इसकी आंच अब विदेशों तक पहुंच रही है.

संजीव पांडेय

विएना में खालिस्तान समर्थकों द्वारा शुरू किए गए जातीय संघर्ष से पूरा पंजाब सुलग उठा. 23 मई को विएना में दबंग सवर्ण सिखों ने डेरा सचखंड के समर्थकों पर हमला बोल दिया, जिसमें डेरा के दलित नेता संत रामानंद की मौत हो गई. डेरा सचखंड की स्थापना 70 वर्षों पहले जालंधर में हुई थी. यह डेरा 14वीं शताब्दी के गुरु रविदास के विचारों को मानता है और इसका मक़सद सिख समुदाय में दलितों का उत्थान करना है. रामानंद सचखंड के प्रमुख नेता थे और वह भारत से विएना प्रवचन के लिए गए थे.

दरअसल, विएना में पिछले महीने तक महज़ एक गुरुद्वारा हुआ करता था, जिसको खालिस्तान की मांग करने वाले कट्टरपंथी सिख आतंकवादी संचालित करते रहे हैं. इस गुरुद्वारे में दलित सिखों को तरजीह नहीं मिलती थी. लिहाजा संत रविदास में आस्था रखने वाले डेरा सचखंड ने एक नए गुरुद्वारे का निर्माण ठीक पुराने गुरुद्वारे के सामने किया. डेरा के इस क़दम से पुराने गुरुद्वारे पर आने वाला चढ़ावा कम होने लगा और नए गुरुद्वारे की आमदनी और श्रद्धालु बंटने लगे. लिहाजा, एक सोची-समझी रणनीति के तहत रविदासी सिखों में अहमियत और लोकप्रियता रखने वाले गुरु रामानंद के प्रवचन के दौरान छह खालिस्तानी समर्थक सिखों ने हमला बोल दिया. इसमें रामानंद की मौत हो गई. हमले की ज़िम्मेदारी खालिस्तान कमांडो फोर्स ने ली है. लंदन में भारतीयों की बहुलता वाले इलाक़े साउथहॉल से संचालित एक रेडियो स्टेशन को भेजे गए अपने ई-मेल के ज़रिए केजेएफ ने विएना में हमले की वजह गुरु ग्रंथ साहिब का अपमान बताया है. बहरहाल, इस हमले में जिन लोगों की पहचान की गई है, वे हैं हरदीप सिंह, तरसीन सिंह, सतविंदर सिंह और जसविंदर सिंह. डेरा सचखंड और सिखों के बीच विवाद शुरू से ही रहा है, लेकिन हाल के दिनों में यह विवाद इसलिए गहराने लगा क्योंकि डेरा सचखंड ख़ुद को सिख डेरा के बजाय एक हिंदू डेरा करार देता था. इस बात को लेकर रूढ़िवादी सिखों में काफी रोष था. हालांकि गुरु ग्रंथ साहिब में डेरा अटूट विश्वास रखता है. डेरा सचखंड के दुनिया भर में कई अनुयायी हैं, जिनमें ज़्यादातर अमेरिका और यूरोप में रहते हैं. वहीं 80 के दशक के बाद से लगातार दलित सिख या रविदासी सिखों की संख्या विदेशों में बढ़ी है. ग़ौरतलब है कि रविदासी और जाट सिख दोनों ही यूरोपीय देशों में आम तौर पर टैक्सी चलाते हैं. लेकिन जातिगत समीकरणों के चलते वहां के गुरुद्वारों में भी दलित सिखों को बराबरी की जगह नहीं मिल पाती. लिहाजा वित्तीय तौर पर मज़बूत होने के बाद रविदासी सिखों ने यूरोप में अपने लिए अलग गुरुद्वारों का निर्माण शुरू कर दिया और यह बात जाट सिखों को नहीं पच रही है.

विशेषज्ञों के मुताबिक, खालिस्तानी समर्थक असल में यूरोप और अमेरिका में रहने वाले सिखों के बीच अपना पैर जमाना चाहते हैं. अमेरिका और यूरोपीय देशों में अनुमानित ढाई लाख सिख रहते हैं जो आर्थिक रूप

सभी फोटो-*पीटीआई*

से काफी समृद्ध हैं. भारत में खालिस्तान की मांग के पीछे इन सिखों के पैसे का भी अहम किरदार रहा है. लेकिन जब से भारत सरकार की नीतियों के चलते पंजाब से आतंकवाद को ख़त्म किया गया है, तब से विदेशों में रह रहे सिख संगठन समय-समय पर खालिस्तान की आवाज़ उठाते रहे हैं. पंजाब बीस साल तक आतंकवाद की लपटों में झुलसा है, और उससे बड़ी मुश्किल से मुक्ति मिली है. आज पंजाब में तरक़्क़ी के साथ-साथ अमन-चैन क़ायम है. आज का पंजाब विदेशों में बैठे खालिस्तान के राग अलापने वालों को नकार रहा है. लिहाजा, पंजाब की जातीय समस्या को भुनाने के अलावा कट्टरवादी सिखों के पास कोई चारा नहीं बचा है. पंजाब में बवाल विएना में डेरा पर हमले और आगजनी की घटना के बाद शुरू हुआ. हालांकि विएना में विवाद की असल वजह पंजाब में तेज़ी से बदल रही सामाजिक व्यवस्था है. दरअसल डेरा सचखंड अन्य डेरों की तरह स्वयंभू संचालकों द्वारा चलाया जाता है और यह सिख समुदाय में बढ़ते जातिगत अंतर की राजनीति को भुनाने का कोई मौका नहीं छोड़ता. विएना में हुई घटना भी पंजाब में डेरा और सिखों के बीच चल रही खींचतान का ही नतीजा है.

ग़ौरतलब है कि इस पूरे विवाद में राजनीतिक पार्टियां राजनीतिक फ़ायदे के लिए तुष्टिकरण की नीति अपनाते रहे हैं. वहीं 1920 में गुरुद्वारा रिफॉर्म कमिटी के बनने के बाद शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी का निर्माण किया गया, जिसका मक़सद पंजाब भर में गुरुद्वारों की व्यवस्था, प्रचार, प्रसार की ज़िम्मेदारी है. लेकिन एसजीपीसी ने पंजाब में सिखों के बीच पनप रहे जातिगत असंतोष के लिए कुछ नहीं किया और वह महज़ अकाली दल को राजनीतिक लाभ दिलाने के लिए काम करता रहा है.

बहरहाल, पंजाब में इनके अलावा भी कई ऐसे डेरे और खेमे हैं, जो सिख समुदाय में उचित जगह न पाने या फिर दरकिनार कर दिए जाने के बाद अस्तित्व में आए. इनमें से ज़्यादातर डेरों और खेमों को जातिगत आधार पर भी देखा जा सकता है, क्योंकि सभी डेरों का आधार वे दलित सिख हैं जो सिखों की मुख्यधारा में ख़ुद को पिछड़ा महसूस करते हैं और जो समाज में बाक़ी सिखों से बराबरी का दर्जा चाहते हैं.

दलित सिखों के इस अहसास की शुरुआत 14वीं शताब्दी में उस वक़्त हो गई थी जब गुरु रविदास को रूढ़िवादी सिखों ने गुरु मानने से इंकार कर दिया था, क्योंकि वह एक दलित थे. सिखों ने उस वक़्त यह दलील दी थी कि वह संत रविदास को गुरु नहीं मानेंगे और उनकी आस्था महज़ गुरु गोविंदसिंह के दस सिद्धांतों में है. इसके बाद कई सालों तक सिख गुरुद्वारों में दलितों पर पाबंदी लगनी शुरू हो गई. यहां तक कि दलित महिलाओं को लंगर की रसोई में जाने की मनाही हो गई थी. ग़ौरतलब है कि सिख धर्म में लोगों की आस्था इसी वजह से बढ़ी थी क्योंकि हिंदू धर्म की जातिगत संरचना के चलते दलित हिंदुओं की हिंदू संप्रदाय से विरक्ति होने लगी और उन्हें हर जाति में समानता की बात करने वाला सिख धर्म आकर्षित करने लगा.

हाल के दौर में पंजाब में एक बार फिर से जातिगत संघर्ष की शुरुआत हुई. आज़ादी के दौरान डेरों की स्थापना हुई और वहां उन्हें एक नई पहचान की उम्मीद जगी. इन डेरों और संप्रदायों ने सिख धर्म में बराबरी की जगह पाने में नाकाम लोगों से गुरु गोविंद सिंह के प्रवचनों में आस्था बरकरार रखने की तो अपील की, लेकिन उन्हें अपने लिए मुख्यधारा के सिखों से अलग होकर एक स्वतंत्र अस्तित्व बनाने के लिए भी कहा.

डेरा सचखंड

जालंधर के निकट एक गांव बल्लन में आज से क़रीब 70 साल पहले संत पीपल सिंह ने इसकी नींव रखी. इस संप्रदाय में अधिकतर सिखों में छोटी मानी जाने वाली जातियों के लोग हैं. वे संत रविदास की शिक्षाओं का पालन करते हैं. डेरे को मानने वाले लोग दलित सिख हैं. इस संप्रदाय के लोग अपने धार्मिक स्थलों में गुरु ग्रंथ साहिब की स्थापना करते हैं, जिसे दूसरे सिखों ने पसंद नहीं किया है. उनका कहना है कि डेरे के अन्य संतों के साथ गुरुग्रंथ साहिब का रखा जाना, उसका अपमान है.

डेरा सच्चा सौदा

डेरा सच्चा सौदा का मुख्यालय हरियाणा के सिरसा में है. पिछले कुछ दिनों से डेरा सबसे अधिक चर्चा में रहा है. क़रीब दो करोड़ लोग इस डेरे के अनुयायी हैं. इस डेरे को मानने वालों में दलितों और पिछड़ी जातियों के साथ महिलाओं की भी बड़ी संख्या है, क्योंकि यह नशे और शराबख़ोरी के ख़िलाफ़ शिक्षा देता है. डेरे की स्थापना 1948 में बलूचिस्तान से आए शाह महसाना ने की थी. इसके बाद शाह सतनाम और वर्तमान में गुरमीत राम रहीम इसके प्रमुख हुए. हाल में ही गुरमीत राम रहीम के पहनावे को लेकर अन्य सिखों से उनका हिंसक विवाद हो गया था. बाबा राम रहीम पर यौन उत्पीड़न और बलात्कार जैसे आरोप भी लगे हैं. हालांकि यह संप्रदाय अपने सामाजिक कार्यों के लिए भी जाना जाता है.

दिव्य ज्योति जागरन संस्थान (डीजेजेएस)

स्वामी आशुतोष महाराज के द्वारा 1983 में स्थापित यह संस्थान जालंधर के निकट नूरमहल में है. ब्रह्मज्ञान पर आधारित इस संप्रदाय के अनुयायी अब भारत के बाहर के देशों में भी हैं. तिहाड़ जेल और इस तरह के कई सामाजिक सुधार के कार्यों के लिए यह संप्रदाय आगे आया है. हालांकि यह संप्रदाय भी सिख समुदाय से विचारधारा के मामले में विवाद में भी रहा है. इसके प्रमुख सिख आतंकवादियों के निशाने पर रहे हैं. साथ ही इसका विवाद मीडिया से भी रहा है.

बाबा भनियारेवाला संप्रदाय

स्वयंभू बाबा पियारा सिंह भनियारेवाला का यह संप्रदाय पंजाब के रोपड़ जिले के धमियाना में स्थित है. इसके भी अधिकतर अनुयायी दलित सिख ही हैं. स्वयं को सिख गुरुओं जैसा बताने वाले बाबा का सिख समुदाय के साथ लगातार विवाद रहा है. इस संप्रदाय पर गुरु ग्रंथ साहिब की प्रतियां जलाने का आरोप लगता रहा है. 2001 में बाबा भनियारेवाला की पुस्तक *भवसागर ग्रंथ* को पंजाब में प्रतिबंधित कर दिया गया था और उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया था. बाबा भनियारेवाला एक पूर्व सरकारी अफ़सर हैं और उन पर कई जानलेवा हमले हो चुके हैं.

मेरी दुनिया.... ...धीर

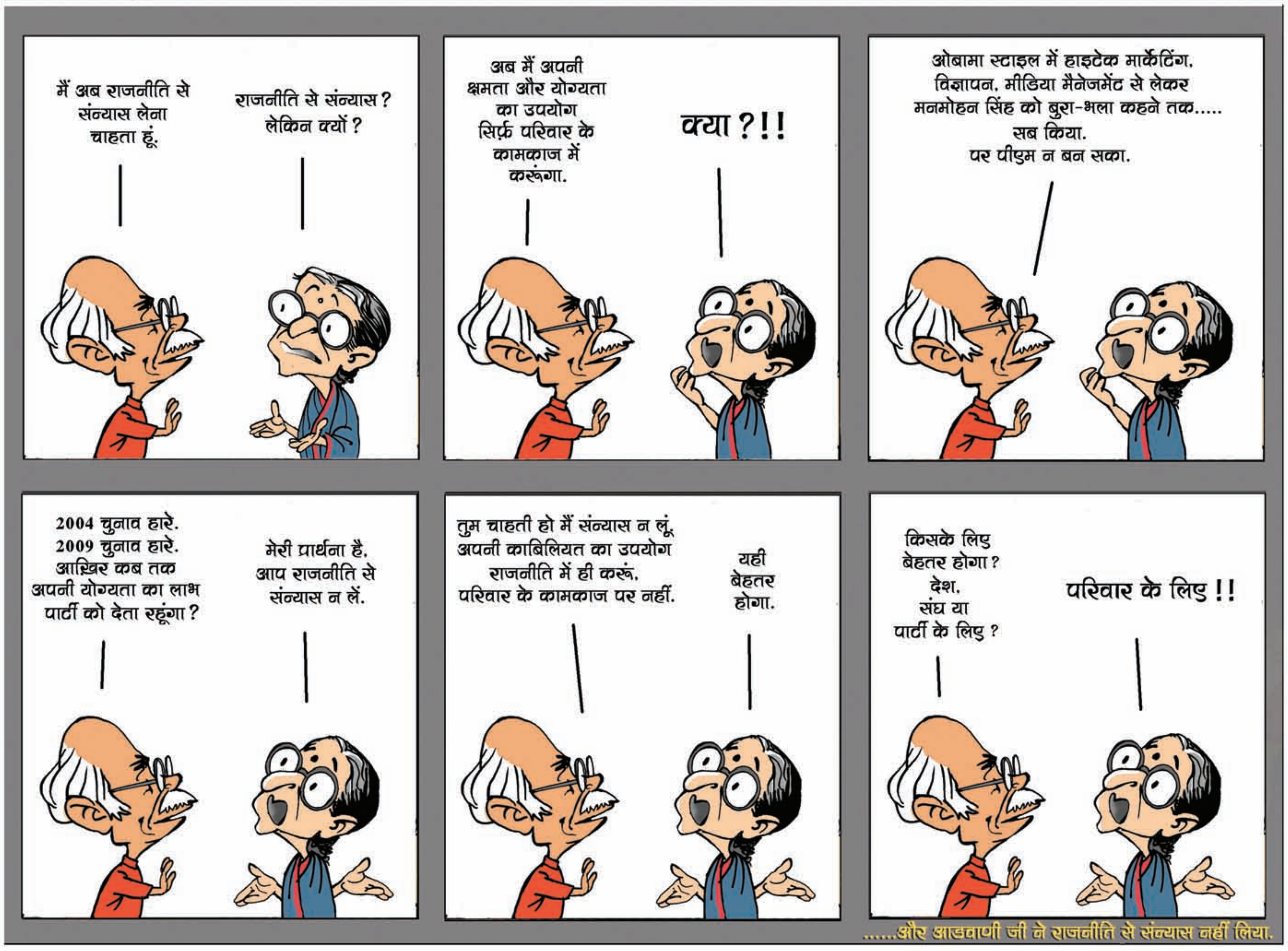

feedback.chauthiduniya@gmail.com

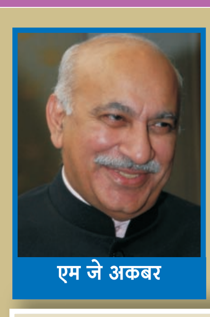

एम जे अकबर

दिल पर मत ले यार

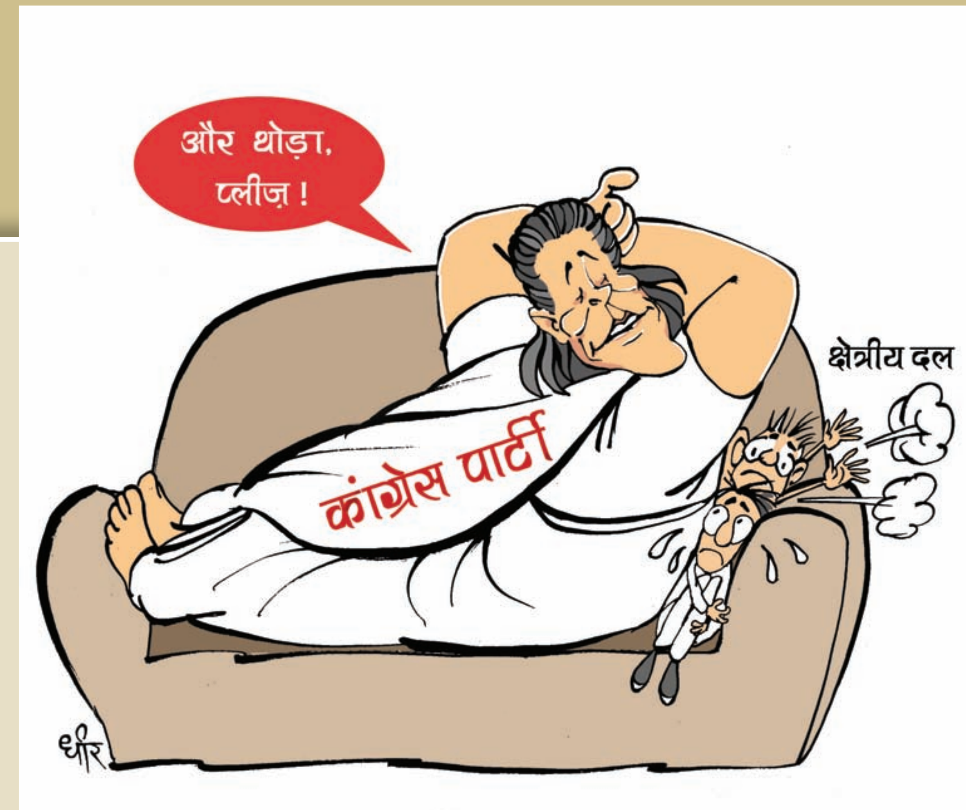

माओ त्से तुंग ने कभी कहा था कि मछलियां शुद्ध पानी में नहीं तैर सकतीं. डॉ. मनमोहन सिंह माओवादी नहीं हैं, लेकिन अब तक उनको तैराकी के उतार-चढ़ाव के बारे में एकाध चीज़ें जान लेनी चाहिए. वह भी ज़ाहिर तौर पर यह बता सकते हैं कि प्रदूषण तो मछलियों के स्वास्थ्य के लिए भी अच्छा नहीं होता.

यथार्थवादी जानते हैं कि शुचिता एक परिवर्तनीय गुण है. डॉ. सिंह को अगर अपने कैबिनेट मंत्रियों पर वित्तीय-शुचिता लादनी है, तो केरल के संत एंटनी को कई सारे विभाग देने होंगे. जो यह सोच रहे हैं कि द्रमुक के साथ की खींचतान केवल अक्षमता या इसके बड़े भाई भ्रष्टाचार या फिर एक परिवार के किसी केक में कई हिस्से ले लेने से संबंधित हैं, तो वह तथ्यों का टेलीविजन कवरेज के साथ घालमेल कर रहे हैं.

राजनीति में जारी फलसफा किसी प्रबंधन नीति से मिलता-जुलता है, जिसे मारियो पूजो ने अपने *गॉडफादर* नामक उपन्यास में भी लिखा है-इसमें कुछ भी व्यक्तिगत नहीं है. यह तो सिर्फ़ व्यवसाय है.

कांग्रेस ने अपने आगामी लोकसभा चुनाव प्रचार की शुरुआत कर दी है. इसने कुछ गठबंधन सहयोगियों को मतदान के दौरान छोड़ दिया. इसने नतीजों के बाद कुछ के पर कतरने शुरू कर दिए हैं. वह आज उनको जांचना चाहती है, जिनको कल वह हटाना चाहती है. तमिलनाडु इसके रडार पर तब से है, जब से इसने गठबंधन में अपनी सीटों की संख्या बढ़ाकर 14 कर ली. अगर आज 14 तो कल 39 क्यों नहीं?

> **कांग्रेस ने अपने आगामी लोकसभा चुनाव प्रचार की शुरुआत कर दी है. इसने कुछ गठबंधन सहयोगियों को मतदान के दौरान छोड़ दिया. इसने नतीजों के बाद कुछ के पर कतरने शुरू कर दिए हैं. वह आज उनको जांचना चाहती है जिनको कल वह हटाना चाहती है. तमिलनाडु इसके रडार पर तब से है, जब से इसने गठबंधन में अपनी सीटों की संख्या बढ़ाकर 14 कर ली. अगर आज 14 तो कल 39 क्यों नहीं?**

बसपा के संस्थापक कांशीराम कहा करते थे कि चुनाव एकमात्र ऐसा समय होता है, जब कोई भी पार्टी सही मायनों में बढ़ती है. कांग्रेस ने महाराष्ट्र में अपेक्षा से अधिक ही प्रदर्शन किया है, इस वजह से इसकी कोई वजह नहीं बनती कि यह उसी जगह रुकी रहे. शरद पवार को दिए गए संदेश के राजनीतिक तर्क अहम हैं-या तो हमारे साथ मिल कर रहो, या अपने निर्वाण की तैयारी करो. पुराने सहयोगियों को कुछ हद तक बर्दाश्त किया जा सकता है, लेकिन कम क़ीमत पर.

2004 का भोज समन्वयवादी था. 2009 में यह मेन्यू शर्तिया तौर पर बदल जाएगा. जो भी सहयोगी छदाम से अधिक कुछ चाहते हैं, उनको किसी और डिनर में जाने के लिए बोल दिया जाएगा. 2004 में मूड समावेशी था, सिवाय मुलायम सिंह जैसे अतिथि के. 2009 में दरवाज़े उनके लिए खुले हैं, जो जाना चाहते हैं और देर से आनेवालों के लिए तो बंद ही हैं.

ऐसे हालात में आंसू या तनाव उपयोगी नहीं होते. शपथग्रहण के एक दिन पहले की शाम लालू प्रसाद यादव को जो पहले तितली की तरह इतरा रहे थे, समझ में ही नहीं आ रहा था कि उनको बिना किसी दीवार के क्यों समझा जा रहा है (इस छवि में दीवार का योगदान मेरा हो सकता है, लेकिन तितली की उपमा निश्चय ही उनकी थी, जब वह वापस लौटने की दलील दे रहे थे). तेज़ सहयोगियों ने संकेत को पहले ही भांप लिया था. जब राजनीतिक पोकर खेला जा रहा था, तो करुणानिधि ने खुली आंखों से ब्लाइंड का दांव लगाया. जब दांव बढ़े और तमिलनाडु में उनकी सरकार को लेकर धमकाया गया, तो करुणा ने दांव दोगुने कर दिए. अगर वह चेन्नई में ख़तरे में थे, तो डॉक्टर मनमोहन सिंह दिल्ली में. करुणानिधि सही थे.

डॉ. फारूक़ अब्दुल्ला की शुक्रवार को फ्लाइट पकड़ कर दक्षिण अफ्रीका जाना भी बिल्कुल संदर्भित था. हरेक चीज़ राजनीतिक थी. यहां तक कि टी-20 के सेमीफाइनल का एक टिकट भी. शरद पवार आईपीएल के सुप्रीमो हैं. शरद और फारूक़ निकट मित्र हैं. दक्षिण अफ्रीका का संकेत द्विअर्थी था. दिल्ली ने इसे तुरंत पकड़ लिया. शपथ ग्रहण के पहले की शाम मनमोहन सिंह ने इस सख्त ख़बर-कि फारूक़ के लिए कैबिनेट में कोई जगह नहीं थी- को एक सौम्य, यहां तक कि भावनात्मक रंग भी देने की कोशिश की. जिस समय तक फारूक़ दक्षिण अफ्रीका में उतर रहे थे, सख्त ख़बर बदल गई थी. फारूक़ अब अगले विस्तार में कैनिबेट मंत्री बन जाएंगे. जेट पर सवार दो आदमियों ने-जिनमें एक चेन्नई और दूसरा दक्षिण अफ्रीका जा रहा था-ने शपथग्रहण के भोज को एक अंतरिम व्यवस्था में बदल दिया था.

कांग्रेस सत्ता में इसे खोने के लिए नहीं आई है. वैसे, धुरी से एक मूल सवाल खिसक गया है. 2004 में सवाल यह था कि कांग्रेस कितने नए दोस्त चाहती थी. 2009 में सवाल बदल कर यह हो गया है कि कांग्रेस कितने विरोधियों को बर्दाश्त कर सकती है. हरेक राज्य के लिए नफे-नुकसान का जायज़ा कर लिया गया है. दिल्ली में तो आप शिबू के साथ सौदेबाजी कर सकते हैं, लेकिन रांची में वह महंगी पड़ेगी.

कांग्रेस और ममता एक-दूसरे के सही साझीदार हैं, क्योंकि वे अभी भी अपने साझा लक्ष्य-राइटर्स बिल्डिंग-से आधे रास्ते की दूरी पर हैं. ममता दिल्ली में एक स्थायी सरकार चाहती हैं, क्योंकि कोलकाता में वे एक-दूसरे के लायक हैं. तृणमूल और कांग्रेस दोनों ही वाम मोर्चे का सफ़ाया चाहती हैं. ममता बंगाल में ऊंचा रहना चाहती हैं, कांग्रेस की भारत में सर्वोच्चता है. ममता की दिल्ली की ज़रूरतें द्रमुक के उलट कम हैं. वह नहीं जानती थीं कि दूसरी कैबिनेट सीट के साथ क्या करना है. वजह भी साफ है. इसके लिए उनको अपने सिपहसालारों में से एक को बढ़ावा देना होता और ज़ाहिर तौर पर पूरी मंडली में असंतोष फैल जाता.

शरद पवार और कांग्रेस का साथ चल रहा है, लेकिन ऐसा दिखता नहीं कि दोनों एक दूजे के लिए बने हैं. उत्तर प्रदेश और बिहार की तरह ही महाराष्ट्र भी कांग्रेस के लिए एक अनिवार्य लक्ष्य है. इसके अलावा महाराष्ट्र में चार महीने बाद विधानसभा का चुनाव तो है ही. कांग्रेस ने इस बार 15 सीटें जीती हैं, पवार ने केवल नौ. कांग्रेस अगली बार इसी अनुपात में सीटों के नए तौर से बंटवारे की मांग करेगी. क्या पवार अपनी पार्टी को हाशिए पर लाए बिना यह कर पाएंगे? या फिर वह हिम्मत दिखाते हुए नवीन पटनायक के रास्ते पर चलेंगे, यानी कांग्रेस से अलग हटकर अपने राज्य के अगले मुख्यमंत्री बनेंगे?

नतीजे पिछले दौर में दिए गए नतीजे हैं. सरकार का गठन भविष्य को बनाने के बारे में है. एक समग्र जीत ने कुछ शंकित सहयोगी भी तैयार कर दिए हैं.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

रवि किशोर

विधायिका दे सकती है विधेयन का अधिकार

भारतीय संविधान में तीनों स्तंभों- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका को अलग-अलग काम सौंपे गए हैं और लोकतंत्र के सही तरीक़े से काम करने के लिए यह ज़रूरी है कि तीनों स्तंभ अपने कर्तव्यों का पालन कर्मठता से करें. विधायिका का मुख्य कार्य क़ानून बनाना है और उन्हें लागू करने का ज़िम्मा कार्यपालिका पर है. हालांकि, बीसवीं सदी में यह स्पष्ट हो गया कि कुछ ऐसी स्थितियां भी हैं जहां कार्यपालिका को क़ानून बनाने की ज़िम्मेदारी भी निभानी पड़ती है. आमतौर पर विधायिका सामान्य सिद्धांतों और नीतियों से जुड़े विषयों पर क़ानून बनाती है और सरकार या किसी प्रशासनिक संस्था को नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है. कार्यपालिका द्वारा विधायिका प्रदत्त शक्ति का प्रयोग ही प्रत्यायोजन विधेयन (डेलीगेट लेजिस्लेशन) कहलाता है. यहां ध्यान देना ज़रूरी है कि क़ानून बनाने की सबसे महत्वपूर्ण शक्ति विधायिका के पास है, क्योंकि यह जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों से बनी है. यह विश्वास रखा जाता है कि ये प्रतिनिधि उस जनता के हितों की रक्षा करेंगे जिसने इन्हें चुना है. यह एक अलग और लगातार जारी बहस है कि ये प्रतिनिधि जनता के हितों का किस हद तक ध्यान रख रहे हैं, लेकिन यह विश्वास ही लोकतंत्र का आधार है. हालांकि, जब क़ानून बनाने की शक्ति कार्यपालिका द्वारा प्रयोग की जाती है तो क़ानून बनाने वाले कोई चुने हुए प्रतिनिधि न होकर अलग-अलग कार्यकारी होते हैं. इनपर हमेशा जनता के अलग-अलग वर्गों के हितों की रक्षा का भरोसा नहीं रखा जा सकता है. इसलिए यह सुनिश्चित करने की ज़रूरत है कि यह कार्यकारी प्राप्त शक्तियों का दुरुपयोग न करें. जनहित का ध्यान रखना प्रत्यायोजन विधेयन (डेलीगेट लेजिस्लेशन) की विवेचना की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण है.

एक प्रत्यायोजन विधेयन (डेलीगेट लेजिस्लेशन) को समझने के लिए विधायिका की अपनी शक्ति प्रदान करने की प्रक्रिया और उसकी सीमाओं को समझना ज़रूरी है.

यहां सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत यह है कि केवल नियम बनाने की शक्ति का अधिकार दिया जा सकता है, विधेयक की नीतियों को तय करने का नहीं. इसलिए यह विधायिका की ज़िम्मेदारी है कि वह क़ानून या विधेयक की ज़रूरी विधेयन नीति तय करे. न्यायालयों ने इस तरह की नीतिगत प्रक्रिया की बड़ी उदारवादी विवेचना की है. हालांकि यह ज़रूरी है कि प्रत्यायोजन विधेयन नीति की तय सीमाओं में ही रहे. न्यायिक समीक्षा के माध्यम से न्यायालयों ने हमेशा से प्रत्यायोजन विधेयनों के मामले में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है. न्यायालयों ने यह सुनिश्चित किया है कि प्रत्यायोजन विधेयन संवैधानिक सीमाओं, ख़ासकर मौलिक अधिकारों, के बाहर न चला जाए, साथ ही क़ानून से मिली शक्ति को भी न लांघें. जिस कार्यकारी को यह शक्ति मिली है उसे नियंत्रण में रखने के लिए अक्सर प्रक्रिया में कई उपाय किए जाते हैं. इन रक्षा उपायों के संदर्भ में भी न्यायालयों की भूमिका महत्वपूर्ण है. वे तय करते हैं कि कौन से उपाय अनिवार्य हैं और कौन से निर्देशित हैं.

प्रत्यायोजन विधेयन(डेलीगेट लेजिस्लेशन) की विवेचना में ये महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं और इस में न्यायालयों का कर्तव्य है कि वे इनकी ऐसी विवेचना करें जिससे विधायिका की पवित्रता बनी रहे, व साथ में जनता के अधिकारों का भी ध्यान रखा जाए. समय-समय पर न्यायालयों ने यह स्पष्ट किया है कि भारतीय विधायिका के पास डेलीगेशन की विस्तृत शक्ति है. कार्यपालिका को नियम बनाने की शक्ति देने से पहले आवश्यक है कि विधेयन नीतियां तय कर दी जाएं. सर्वोच्च न्यायालय ने पहली बार 1951 में देल्ही लॉज एक्ट मामले में यह कहा कि वह विधायिका के अपनी ज़रूरी विधायी शक्तियों को सौंपने के विचार पर सहमत नहीं है जिनसे विधायी नीतियों और नीति के आख़िरी रूप का फैसला होता है. विधायिका को अपनी शक्ति डेलीगेट करने से पहले ही विधायी नीतियों और सिद्धांतों को तय करना चाहिए और नीति के लिए ज़रूरी दिशानिर्देश भी देने चाहिए. विधायिका केवल क़ानून के मक़सद और नीतियों को लागू कराने के लिए किसी बाहरी अधीनस्थ संस्था से डेलीगेट कर सकती है. अतः, नियम बनाने की शक्ति तो कार्यपालिका को डेलीगेट की जा सकती है लेकिन विधायिका से ही अपेक्षा की जाती है कि वह विधायी नीतियों और फिर उससे बन रहे क़ानून की रूपरेखा तय करे. यह आवश्यक विधायी कार्य के नाम से जाना जाता है और विधायिका को इसे स्वयं ही निष्पादित करना होता है. आवश्यक विधायी कार्य के न होने की स्थिति में, समीक्षा प्रक्रिया में चुनौती विधायिका के द्वारा आवश्यक विधायी कार्य के परित्याग पर आधारित होती है. यह न्यायालयों के द्वारा पूरी तरह से स्पष्ट कर दी गई है. 1979 में अविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि-विधायिका अपनी स्थिति को कम नहीं कर सकती. वह पूर्ण या आवश्यक विधायी कार्यों को डेलीगेट नहीं कर सकती, अगर डेलीगेशन होता भी है तो ऐसे विधेयन पर संसद का नियंत्रण संवैधानिक आवश्यकता के तौर पर होना चाहिए. न्यायालय ने आगे कहा कि -विधायिका नीतिगत मामलों का नियंत्रक है और अगर डेलीगेट नीति को पलटने की बात करे तो यह विधायिका के अधिकार का उलटफेर होगा. यह वाक्य साफ तौर पर दत्त विधेयन की विवेचना और उसकी वैधानिकता के सवाल पर न्यायपालिका के रुख़ को दिखाता है. यह विधायी नीति के चारों कोनों के अंदर ही होना चाहिए. इसलिए, अधीनस्थ और सहायक नीतियों को डेलीगेट करने का अधिकार है, दूसरे शब्दों में जिसे ख़ाली जगह भरने की शक्ति भी कह सकते हैं. विधायिका, विधायी नीति तय करने के बाद कार्यकारी संस्था को कार्य के तरीक़े को लेकर निर्देश दे सकती है और इसके आगे का काम उस संस्था के ज़िम्मे हो सकता है. विधायिका की अपनी शक्ति दूसरे को देने की क्षमता संविधान के द्वारा प्रदत्त विधायी शक्ति से निकलती है. यह शक्ति उस सिद्धांत पर आधारित जिसके मुताबिक शक्ति के प्रयोग के लिए ज़रूरी कार्य शक्ति देने की प्रक्रिया में ही अंतर्निहित हैं. अब यहां डेलीगेशन की शक्ति की सीमाओं का सवाल उठता है. यह निष्कर्ष इस बात से साफ निकाला जा सकता है कि संविधान क़ानून बनाने का कार्य विधायिका को सौंपता है. इसका मतलब है कि शक्ति किसी दूसरे को स्थानांतरित नहीं की जा सकती. इसलिए, विधायिका को दत्त विधेयन और आवश्यक विधायी कार्य तय करने की सीमा के बीच एक संतुलन बनाना ज़रूरी है. देवीदास बनाम पंजाब राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने फ़ैसला दिया कि विधायिका किसी क़ानून को हटाने या उसके मूल तत्वों को बदलने के लिए किसी को अधिकार नहीं दे सकता. इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायालयों के पास प्रत्यायोजन विधेयनों की समीक्षा कर उन्हें - संविधान की सीमा से बाहर जाने और मूल क़ानून के उल्लंघन -के दो मुख्य कारणों से अवैध ठहरा सकती है. यह बात मेनका गांधी के मामले में दोहराई गई थी. एक विधान या क़ानून को इस आधार पर भी चुनौती दी जा सकती है कि वह किसी मौजूदा क़ानून से उलट है या फिर मनमाना है और इस तरह क़ानून का ही नहीं अनुच्छेद 14 का भी उल्लंघन करता है.

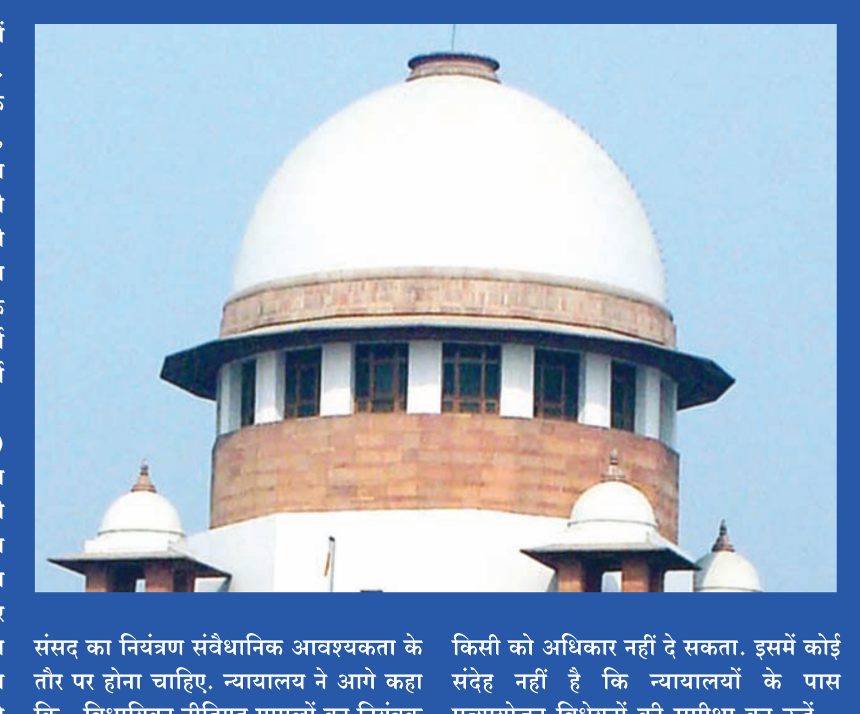

इंग्लैंड के उलट भारत में संविधान न कि संसद सर्वोच्च और संप्रभु है. इसलिए संविधान की भावना को बचाए रखने का न्यायालयों का कर्तव्य भी सर्वोच्च है. इस विधेयन के मामले में भी न्यायालय यही सुनिश्चित करते हैं कि कोई विधेयक संविधान की भावना और सिद्धांतों के ख़िलाफ़ न जाए. इस बात पर मेनका गांधी बनाम भारतीय संघ के बहुचर्चित मामले में विस्तार से बहस हुई थी, जहां न्यायालय ने यह स्पष्ट किया था कि अनुच्छेद 19 के तहत मिली मूल स्वतंत्रताओं पर रोक लगाने वाला कोई भी क़ानून, संविधान में तय किए गए रास्ते (प्रोसिज़र एस्टैबलिस्ड बाई लॉ) से ही होना चाहिए. इसकी व्याख्या को और विस्तृत करके इसका मतलब एक ऐसे रास्ते से होता है जो न्यायसंगत, निष्पक्ष और तार्किक हो केवल क़ानून का काला अक्षर नहीं. मेनका गांधी बनाम भारतीय संघ का मामला अपने फ़ैसले के बाद से किसी भी दत्त विधेयन की वैधता के मामले में मील का पत्थर साबित हुआ है. हर विधेयन की तरह दत्त विधेयन के विवेचन में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत का पालन किया जाता है कि जब तक किसी विधेयन को न्यायालय में अवैध नहीं ठहरा दिया जाता तब तक उसे वैध ही माना जाएगा. इस का मतलब है कि अगर किसी क़ानून की अच्छी या बुरी -दो व्याख्याएं हो सकती हैं तो न्यायालय को उस व्याख्या को मानना होगा जो कि अच्छा हो. बनवारी अग्रवाला बनाम बिहार राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस विषय पर विस्तार से चर्चा की है कि परामर्श की प्रक्रिया अनिवार्य है या नहीं. न्यायालय ने इससे पहले के मनबोधन अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में इस्तेमाल किए गए एक नियम का भी उल्लेख किया., इसके अलावा एक और मामला जहां परामर्श की प्रक्रिया को केवल निर्देश आधारित माना गया था वह हिंदुस्तान ज़िंक लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड का था. हालांकि हर मामले की परिस्थितियों के बीच के अंतर को नकारा नहीं जा सकता था लेकिन यह बात तय थी कि प्रत्यायोजन विधेयन की प्रक्रिया का पूरा नियंत्रण न्यायिक विवेचना पर निर्भर करता है. यह हरेक मामले के हिसाब से तय होता है. हालांकि, बनवारी अग्रवाल के मामले से कुछ सिद्धांत निकले, जिनमें सबसे ख़ास जनहित से जुड़ा है. अगर प्रक्रियागत नियम की अवहेलना जनता के प्रति पूर्वाग्रह की दिशा में हो तो उस नियम के अधिकतर मामलों में अनिवार्य ही समझा जाएगा. न्यायपालिका का यह रवैया प्रत्यायोजन विधेयन की विवेचना से जुड़े सभी मामलों में देखने को मिलता है और न्यायिक समीक्षा की भावना का परिचायक है. भारत जैसे देश में जहां कल्याण राज्य का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है, कार्यपालिका के पास कई अर्द्ध या आभासी विधेयक यानी नियम बनाने के कार्य होते हैं. जब तक कि मूल नीतियां विधायिका के द्वारा तय की गई हों, न्यायालय इन प्रत्यायोजन विधेयनों को वैध मानते हैं. सबसे महत्वपूर्ण बात है कि दत्त विधेयनों का न्यायशास्त्र जनहित से जुड़ा है. शायद यही कारण है कि न्यायिक समीक्षा की भूमिका दत्त विधेयनों के मामले में इतनी महत्वपूर्ण है. इसे संवैधानिकता और मूल क़ानून में लिखी प्रक्रियागत ज़रूरतों के आधार पर देखा जा सकता है. उनकी विवेचना हमेशा जनता के प्रति पूर्वाग्रह को ध्यान में रखकर की जाती है.

हमारे देश में संविधान सर्वोच्च है और संविधान की भावना जनता को दिए गए अधिकारों में शामिल है. कोई विधेयन जो इन अधिकारों की भावना के ख़िलाफ़ है, अवैध है. साथ ही शक्तियों का बंटवारा हमारे लोकतांत्रिक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण भाग है.

(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

प्रिय संपादक जी,

दरभंगा स्टेशन के स्टॉल पर आपका साप्ताहिक अख़बार *चौथी दुनिया* देखने-पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ. साज-सज्जा, काग़ज़ और विषयों की मौलिकता में एक नई बात मिली. एक नया तेवर, कुछ तीखा लेकिन सच्चा. अख़बार का काम है कि दो टूक कहना, सच्ची स्थितियां सामने रखना, निर्भय और निर्मम रहना. वह आप कर रहे हैं तोप मुकाबिल होकर.

नियमित स्तंभ में हिंदू होने का धर्म लेख आंखें खोलने वाला है. रूढ़िवादी बन गए या बना दिए गए हिंदू धम्र की यह व्याख्या सबको अच्छी लगेगी. एक नई सांस और नई हवा की तरह अत्यंत व्यावहारिक और सामयिक. पुरुषोत्तम अग्रवाल की खोजपरक चर्चा *कथा स्वामी रामानंद की* भी महत्वपूर्ण जानकारी है. शेष सभी बोफोर्स, तालिबान, ठेके पर लोकतंत्र, अरुण जेटली ऐसा क्यों कर रहे हैं, पहले मुख्यमंत्री तय होंगे, फिर प्रधानमंत्री आदि विश्लेषण भी प्रशंसनीय हैं.

ऐसा संतुलित और विचारोत्तेजक अख़बार निकालने के लिए मेरा धन्यवाद क़बूल करें.

आपका
बलदेव लाल दास
जिला संयोजक
भा. सं. ज्ञान परीक्षा
दरभंगा (बिहार)

संपादक महोदय

चुनाव हुए और सरकार भी चुनी गई, कुछ अच्छी-बुरी बातों के साथ सरकार भी बन गई. राजनीतिक हलचलों की गर्म ख़बरों का एक महत्वपूर्ण अध्याय ख़त्म हुआ. कृपया स्वास्थ्य संबंधी, शिक्षा संबंधी, व्यवहार संबंधी ख़बरें और विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित करने का कष्ट करें.

हमारे देश में पहली समस्या मैं स्वास्थ्य को मानती हूं और उसके बाद शिक्षा को, यही बुनियादी चीज़ें हैं जिनकी वजह से हमारा देश एकरूपता से विकास नहीं कर पा रहा और संपन्न देशों में भी नहीं आ रहा. उम्मीद है कि इन विषयों को आगे के अंकों में समाहित करने का कष्ट करेंगे, ताकि पाठक हर विषय पर जागरूक होकर जीवन यापन कर सकें.

रिमझिम कुमारी
देवघर, झारखंड

जब तोप मुकाबिल हो

प्रधानमंत्री जी, ज़रा ग़ौर कीजिए

> **प्रधानमंत्री को अपनी दो प्राथमिकताएं तय करनी चाहिए. पहली इस देश की क़ानून व्यवस्था व दूसरी महंगाई. जिन अख़बारों को हम पढ़ते हैं और जिन ख़बरों को टीवी पर देखते हैं, उन्हें प्रधानमंत्री भी पढ़ते और देखते होंगे. तब यह कैसे हो सकता है कि उनकी आंखों से ऐसी ख़बरें ओझल हो जाएं. कैसी ख़बरें हैं जो ओझल हो जाती हैं!**

मनमोहन की सरकार ही सही संबोधन है इस सरकार के लिए, क्योंकि इसे कांग्रेस की सरकार तो कभी नहीं कह सकते. मनमोहन सिंह जी प्रधानमंत्री बन गए और उन्होंने अपनी प्राथमिकताएं भी गिना दीं, बना भी लीं और यह भी तय कर लिया कि ख़ुद देखेंगे कि किस पर कितना अमल हो रहा है. एक सलाह मनमोहन सिंह को दी जा सकती है, कि अपनी बीमारी और उम्र को देखते हुए उन्हें अपने साथ एक ऐसा मंत्री रखना चाहिए जो यह काम कर सके, क्योंकि वे लाख कहें पर लोग भरोसा नहीं करेंगे कि मनमोहन सिंह यह काम शुरू भी कर पाएंगे. यह मंत्री ज्योतिरादित्य सिंधिया हो सकते हैं. पिछली सरकार में ज्योतिरादित्य अकेले मंत्री थे जो अपने मंत्रालय के काम-काज की स्वयं निगरानी करते थे. उनके मंत्रालय के सचिव उनसे कांपते थे. इतना ही नहीं, ज्योतिरादित्य सिंधिया यह भी ध्यान रखते थे कि उन्होंने जिन कार्यों के लिए कहा है वे हो भी रहे हैं या नहीं. अब ज्योतिरादित्य सिंधिया को प्रधानमंत्री क्या ज़िम्मेदारी देते हैं यह वही जानें, पर प्रधानमंत्री होने के नाते उन्हें सही सलाह देने का काम इस देश के लोगों का है.

प्रधानमंत्री को अपनी दो प्राथमिकताएं तय करनी चाहिए. पहली इस देश की क़ानून व्यवस्था व दूसरी महंगाई. जिन अख़बारों को हम पढ़ते हैं और जिन ख़बरों को टीवी पर देखते हैं, उन्हें प्रधानमंत्री भी पढ़ते और देखते होंगे. तब यह कैसे हो सकता है कि उनकी आंखों से ऐसी ख़बरें ओझल हो जाएं. कैसी ख़बरें हैं जो ओझल हो जाती हैं!

हमारी नज़रों में अख़बार खोलते ही हर सुबह ऐसी घटनाओं की भरमार दिखाई देती है जिनमें सड़क चलते लोग लूट लिए जाते हैं, औरतों के गले की चेनें खींच ली जाती हैं, दिन-दहाड़े घर से निकलते ही औरतों के पर्स छीनने की कोशिश होती है. बैंक में जाते या आते समय रुपयों वाला बैग सफलतापूर्वक छीन कर लुटेरे भाग जाते हैं, रात में ऑटो पर बैठते ही ऑटो वाले के साथी सवारी को घेर कर लूट लेते हैं. यहां तक कि कूरियर देने के नाम पर भी लोगों को लूट लिया जाता है. हाल ही में करनाल में एक महिला को उसी की कार में घुस कर कुछ लोगों ने अगवा कर लिया और उसे चंडीगढ़ में उसके घर तक ले गए और फिर वहां उसके साथ लूटपाट की. एटीएम के बाहर छीनाझपटी की घटनाएं तो पहले भी होती थीं, अब तो लुटेरों ने एक नया तरीक़ा निकाला है, वह बंदूक की नोक पर आदमी को एटीएम के अंदर भेज कर उसी से पैसा निकलवाते हैं और लेकर भाग जाते हैं. अब तो मुंबई में कार्गो में लद रहा सोना भी तीन आदमी आकर लूट कर भाग जाते हैं. छोटे शहरों में बैंकों को लूटना आम बात हो गई है.

ये ख़बरें बड़े शहरों की हैं. आपके शहर में भी ऐसा ही हो रहा होगा, लेकिन उसकी अख़बारों या टीवी में रिपोर्ट नहीं होती होगी. पुलिस भी रिपोर्ट नहीं लिखती. रिपोर्ट लिखे जाने पर कहती है कि किसे गिरफ़्तार करें. रिपोर्ट इस अंदाज़ में लिखी जाती है कि कभी चोर पकड़ा ही नहीं जा सकता. गांवों में तो हालत और ख़राब है. शाम सात बजे के बाद कहां चोरी होगी और कहां डाका पड़ेगा, कहा नहीं जा सकता. अगर सर्दियां हैं तो शाम छह बजते-बजते साइकिल लुटने का डर गांवों में फैल जाता है.

सरकार सोती रही और यह आग अब शहरों में, यहां तक कि देश की राजधानी में आ पहुंची है. चोरी और लूट की घटनाएं तो दिन में होती ही हैं, सरे आम लड़कियों को अगवा करने की घटनाएं अब होने लगी हैं. बलात्कार एक फैशन बनने लगा है.

> **सरकार सोती रही और यह आग अब शहरों में, यहां तक कि देश की राजधानी में आ पहुंची है. चोरी और लूट की घटनाएं तो दिन में होती ही हैं, सरे आम लड़कियों को अगवा करने की घटनाएं अब होने लगी हैं. बलात्कार एक फैशन बनने लगा है.**

इसी तरह महंगाई है. दाल, गेहूं, चावल, तेल, मसाले, चीनी, मोटा अनाज सभी की क़ीमतें आम आदमी को परेशान कर रही हैं. सब्ज़ियों के बारे में कुछ कहना ही बेकार है. सब्ज़ी वाला अब किलो में भाव नहीं बताता, ग्राम में बताता है क्योंकि वह जानता है कि किलोभर कोई एक साथ ले ही नहीं सकता.

यह सच है कि महंगाई और क़ानून व्यवस्था राज्य के विषय हैं, लेकिन राज्य सरकारें इस पर ध्यान नहीं दे रहीं. अगर सरकारें ध्यान नहीं देंगी तो क्या यह समस्या इसी तरह बढ़ती जाएगी? प्रधानमंत्री भी ऐसी ख़बरें पढ़ते होंगे और उन्हें चिंता होती होगी, ऐसा हमारा मानना है. तब क्यों उनका मन नहीं कांपता? क्यों वह नहीं सोचते कि देश के पुलिस बल में कहां कमज़ोरी आ गई है कि वह क़ानून व्यवस्था सुधारने की जगह उसे बिगाड़ने में हिस्सेदार बन रही है. क्या पुलिस को प्रधानमंत्री जी का गृह मंत्रालय ज़िम्मेदार नहीं बना सकता? क्या वे राजनैतिक दलों को, उनकी सरकारों को इसके लिए तैयार नहीं कर सकते? अगर प्रधानमंत्री पहल करें और जो दल उनका साथ न दे, तो वह दल जनता की नज़रों में उसी तरह गिरेगा जैसे पिछले आम चुनावों में कई दल गिरे हैं.

पुलिस रिफार्म को लेकर कई कमीशन बने, क्यों उन कमीशनों पर कोई अमल नहीं हो पा रहा? क्यों पुलिस की ट्रेनिंग पद्धति में आमूल परिवर्तन नहीं हो रहा? क्यों पुलिसवालों की सुविधाओं में बढ़ोतरी नहीं हो रही, क्यों उन्हें सभ्य समाज की ज़िम्मेदार संस्था के रूप में नहीं बदला जा रहा?

जो पुलिस आम नागरिकों की रक्षा चोरों और लुटेरों से नहीं कर सकती, वह आतंकवाद का सामना कैसे कर सकती है? इसी लिए आतंकवादी घटनाएं हो जाती हैं और पुलिस सोती रहती है. घटनाएं होने के बाद भी आजतक अधिकांश घटनाओं में शामिल लोगों को पुलिस पकड़ नहीं पाई.

महंगाई का सामना भी मुख्यतया केंद्र सरकार को ही करना होगा. अगर प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की सरकार इस मोर्चे को, इस समस्या को अनदेखा करती है तो यह उसके लिए शर्मिंदा करने वाली बात होगी. देश के लोग मनमोहन सिंह से आशा लगाए हैं कि इस बार ज़रूर उनकी तक़लीफ़ें दूर होंगी. हमारा प्रधानमंत्री जी से कहना है कि आप बड़ी चीज़ें करें, उनकी सूची बनाएं, बड़ी योजनाएं बनाएं, लेकिन सबसे पहले इन दो समस्याओं को सामने रखें.

एक ख़तरा भी दिखाई दे रहा है. महंगाई का रिश्ता प्रधानमंत्री, उनके मंत्रियों और सांसदों के सामने नहीं है, लेकिन ख़राब क़ानून व्यवस्था का शिकार वे भी हो सकते हैं. ख़बरें छप सकती हैं कि मंत्री की पत्नी या बेटा लुटा, सांसदों को रास्ते चलते रोक कर उनकी जेब में जो भी था वह निकाल लिया गया. पत्रकारों के साथ इसकी शुरुआत हो चुकी है. अब बारी सरकारी अधिकारियों और नेताओं की है. इसलिए प्रधानमंत्री जी, कृपया इन दो समस्याओं को सर्वोच्च प्राथमिकता पर रखिए, देश के मुख्यमंत्रियों से लोगों को आशाएं कम हैं. आप चाहे मुख्यमंत्रियों को बुलाएं, चाहे राजनीतिक दलों को, लेकिन जनता को ख़राब क़ानून व्यवस्था और महंगाई से छुटकारा दिलाने की योजना अवश्य बनाएं. आपकी पहल का हमें इंतज़ार है प्रधानमंत्री जी.

संपादक

editor.chauthiduniya@gmail.com

स्वात की लड़ाई : ख़तरे और संभावनाएं

स्वात से आतंकियों को हटाने के लिए शुरू किए गए सैन्य अभियान के तीन सप्ताह बाद सुरक्षा बलों ने अहम जीत हासिल की है. इसमें मिंगोरा शहर के अहम हिस्सों को वापस अपने क़ब्ज़े में लेना भी शामिल है. इसके बावजूद अब भी सैन्य, मानवीय और राजनीतिक मोर्चों पर बहुत कुछ करने की ज़रूरत है. अनिश्चितताओं से भरे हालात में नई समस्याएं भी उभर रही हैं. इसके संकेत सिंध में स्वात के शरणार्थी संकट के जातीय रूप लेने से भी स्पष्ट हैं, जहां राष्ट्रवादी समूह प्रांत में संभावित तौर पर विस्थापितों के आने के विरोध में हड़ताल की अपील कर रहे हैं.

हालांकि, तालिबान के ख़िलाफ़ व्यापक नागरिक विरोध, सैन्य दृढ़ता और राजनीतिक तौर पर आम राय ने मलाकंद इलाक़े में आतंकवाद को एक पुरज़ोर धक्का देने की ज़मीन तैयार की. नेतृत्व, बुद्धिमानी और दर्शन की ज़रूरत आगे आने वाली जटिल चुनौतियों से निपटने में पड़ेगी.

पिछले सप्ताह की उत्साह बढ़ाने वाली घटना यह थी कि एक सर्वदलीय बैठक बुलाई गई और उलेमा और मसाएख़ की कई सारी मुलाक़ातें हुईं, जिन्होंने आतंक के ख़िलाफ़ देश की लड़ाई को पूरी तरह से अपना समर्थन देने की घोषणा की.

एकता के अभूतपूर्व प्रदर्शन में तक़रीबन 43 दलों और धार्मिक संगठनों ने राजनीतिक पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर प्रधानमंत्री यूसुफ रज़ा गिलानी की अध्यक्षता वाली इस्लामाबाद की बैठक में शिरकत की. यह बैठक 18 मई को सैन्य अभियान के समर्थन और प्रोत्साहन के लिए बुलाई गई थी. पाकिस्तान मुस्लिम लीग (एन) के अध्यक्ष मियां नवाज़ शरीफ़ के साफ रुख़ ने बैठक में आम राय बनाने के पक्ष में काम किया और 15 सूत्री प्रस्ताव की आम राय से मंज़ूरी की दिशा में काम किया. कुछ विरोधी दल को चुप कराने का काम शरीफ़ की आवाज़ ने कर दिया.

राजनीतिक आम राय और बदले हुए जनमानस से पता चलता है कि सैन्य अभियान को वह समर्थन मिल चुका है, जो पहले कम ही हासिल होता था. हालांकि इस राजनीतिक गति को बनाए रखने के लिए सरकार को लगातार विपक्षी दलों के संपर्क में रहना होगा, ताकि आगे आने वाली चुनौतियों के लिए तैयारी की जा सके. जनसमर्थन भी बहुत जल्द कमज़ोर भी पड़ सकता है. ख़ासकर एक मानवीय त्रासदी की दशा में, जिसका पूरा फैलाव अभी बाक़ी है. इसी वजह से सरकार को इस राजनीतिक और नागरिक समर्थन को हल्के में लेने की भूल नहीं करनी चाहिए.

> **राजनीतिक आम राय और बदले हुए जनमानस से पता चलता है कि सैन्य अभियान को वह समर्थन मिल चुका है, जो पहले कम ही हासिल होता था. हालांकि इस राजनीतिक गति को बनाए रखने के लिए सरकार को लगातार विपक्षी दलों के संपर्क में रहना होगा, ताकि आगे आने वाली चुनौतियों के लिए तैयारी की जा सके. जनसमर्थन भी बहुत जल्द कमज़ोर भी पड़ सकता है. ख़ासकर एक मानवीय त्रासदी की दशा में, जिसका पूरा फैलाव अभी बाक़ी है.**

सरकार हालांकि दूसरे सकारात्मक संकेतों से राहत की सांस ले सकती है. मसलन, उग्रवाद-विरोधी अभियान के लिए बढ़ता समर्थन और धार्मिक नेताओं और उलेमाओं का मिलता सपोर्ट. पिछले दस दिनों में उलेमा और मसाएख़ों के दो लगातार सम्मेलनों ने तालिबान ब्रांड के शरिआ को ख़ारिज़ कर दिया है और सैन्य अभियान को पाकिस्तान के अस्तित्व और संप्रभुता के लिए ज़रूरी बताते हुए उसका समर्थन किया है. बरेलवी संप्रदाय के इन नेताओं ने आत्मघाती बम हमले और सिर कलम करने को ग़ैर-इस्लामिक बताते हुए फतवा भी जारी कर दिया.

सैन्य अभियान के पीछे धार्मिक नेताओं की ख़ासी तादाद होने की वजह से देश के राजनीतिक नेतृत्व के पास एक अनूठा मौका है कि धार्मिक नेताओं को लगातार अपने साथ रखें, ताकि आतंकियों की घटिया विचारधारा का एक दूसरा विकल्प भी दिया जा सके. अगर उग्रवाद को राजनीतिक तरीक़ों से बेकार किया जा सकता है, तो हिंसक अतिवाद के विचार को भी हराना उतना ही अहम है. धार्मिक नेताओं के तर्क कई बार आतंकियों के संदेश को ख़त्म करने में, उनके प्रभाव को कम करने और दीर्घकालीन तौर पर उनके विचारों को मिटाने में अहम भूमिका निभा सकते हैं. अगर धार्मिक नेताओं के प्रभाव को ठीक ढंग से इस्तेमाल किया जाए, तो समय के साथ वह विचारों की लड़ाई जीतने में अहम भूमिका निभा सकते हैं.

इस डांवाडोल हालत में जहां हमारे पास मौके हैं, वहीं ख़तरे भी. सैन्य, राजनीतिक और मानवीय मोर्चों के मसले पर नेतृत्व की परीक्षा होगी, हालांकि सुरक्षा बलों ने तालिबान को उनके मज़बूत गढ़ में घेर लिया है, पर युद्ध एक ऐसी ज़मीन पर हो रहा है, जो आतंकियों का देखा भाला और उनके फ़ायदे का है. इस इलाक़े की भौगोलिक बनावट सेना पर आतंकियों की बनिस्बत अधिक भारी पड़ती है, क्योंकि आतंकी गुरिल्ला तकनीक से लड़ रहे हैं. गुफाओं और भूमिगत बंकरों की भूलभुलैया आतंकियों को मुफीद पड़ती है, और वह सेना से बच जाते हैं.

अभी ज़ोरदार लड़ाइयां बाक़ी हैं. यह युद्ध लंबा चलेगा. सैन्य अधिकारियों ने कोई भी समयसीमा देने से इंकार कर दिया है. उग्रवाद को ख़त्म करने की इस लड़ाई में उलझनें और बढ़ेंगी, अगर आतंकी एक साथ मिल जाते हैं और युद्धक्षेत्र में या उसके बाहर भी मिलकर हमला करते हैं.

सुरक्षा बल उग्रवादियों को पड़ोस के इलाक़ों से मिल रहे हथियारों और मदद की कड़ी को तोड़ने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन अब तक जनजातीय इलाक़ों के तहरीक-ए-तालिबान के आतंकियों का मलाकंद के उग्रवादियों के समर्थन में आने का संकेत नहीं मिला है. इससे सेना के उस दावे को बल मिलता है कि अलग इलाक़ों और जनजातियों के चरमपंथियों के स्थानीय मसले होते हैं और उनसे अलग-अलग निपटा जा सकता है. तहरीक का नेतृत्व भले ही चाहे जितने भी दावे कर ले, लेकिन यह गठबंधन उससे भी ढीला है, जितने का अनुमान था. इसी बीच कलाम और दीर के निचले इलाक़े में आतंकियों के प्रवेश के हथियारबंद प्रतिरोध की ख़बरें भी आई हैं, जो दिखाती हैं कि सैन्य अभियान में लोगों का भरोसा जगा है और यह तालिबानी उग्रवादियों को रोकने और उनकी वापसी में मुख्य भूमिका निभा सकता है.

स्वात के विभिन्न इलाक़ों में जनजातीय लश्कर बनाए जा रहे हैं, ताकि आतंकियों का सामना किया जा सके, जबकि प्यूचर घाटी के लोग सुरक्षा बलों की मदद आतंकियों की पहचान में कर रहे हैं. ये सारे विकास उग्रवाद विरोधी प्रयासों का एक अहम पक्ष दिखाते हैं. वह पक्ष है, स्थानीय जनता की मदद.

यह एक अगला और सबसे अहम सवाल उठाता है कि सैन्य अभियान के पूरा होने के बाद क्या राजनीतिक और प्रशासनिक शून्य को भरेगा? क्या सेना को कम से कम शुरुआती दौर में सुरक्षा मुहैया कराने, पुलिस व्यवस्था क़ायम करने और मूलभूत सुविधाएं मुहैया कराने और प्रशासनिक ढांचा क़ायम रखने के लिए रुके रहना होगा? संघर्ष के बाद के समय के लिए प्रभावी और विश्वसनीय प्रयास बेहद अहम हैं, वरना सैन्य अभियान के सारे फ़ायदे ख़त्म हो जाएंगे. एक कारगर योजना के बिना आतंकियों के इलाक़े में लौट आने का ख़तरा बराबर बना रहेगा और इलाक़े के लोगों को डराता रहेगा. सरकार को सुरक्षा और जनसेवाओं के लिए एक योजना बनानी चाहिए, ताकि अभियान के बाद के समय में स्वात के निवासियों में विश्वास क़ायम किया जा सके और यह साबित भी किया जा सके कि अभियान के बाद की स्थिति से निपटने में भी सरकार सक्षम है. यह ख़ास तौर पर इसलिए अहम है, ताकि देश और विदेश की इस आशंका को ख़त्म किया जा सके कि इस्लामाबाद के पास वैकल्पिक योजना नहीं है.

स्वात के अभियान के बाद की चुनौतियों में सबसे ज़रूरी विस्थापितों की समस्या से निपटना है, जिसने व्यापक स्वरूप ले लिया है. मानवीय त्रासदी का प्रबंधन दिलों और दिमाग़ों को जीतने के लिए सबसे ज़रूरी है. सैन्य अभियान के लिए जनता का और राजनीतिकों का समर्थन उड़ सकता है अगर बीस लाख विस्थापितों की समस्या को ढंग से नहीं सुलझाया गया. इस मामले में कुछ शिविरों में अव्यवस्था और कुप्रबंधन की शिकायतें ख़तरे की घंटी बजाती हैं. सरकार को इनका फौरी तौर पर समाधान करना होगा, इससे पहले कि समस्या किसी तबाही में बदल जाए.

स्वात के आतंकियों के अत्याचार अगर जनता का मिज़ाज बदलने में उत्प्रेरक बने, जिससे सैन्य कार्रवाई की शुरुआत का आधार बना, तो अब यह राजनीतिक दलों और सैन्य अधिकारियों पर निर्भर है कि इस लाभकारी स्थिति का फ़ायदा उठाएं और अपनी बढ़त बनाए रखें. इसका मतलब एक समग्र रणनीति बनाकर उस पर काम करने की और उसे सावधानीपूर्वक समन्वित करने की है. साथ ही सैन्य, राजनीतिक और मानवीय कसौटियों पर चीज़ों को सही करने की ज़रूरत है. इसका यह भी मतलब है कि अनदेखे और अनसोचे ख़तरों का भी मुक़ाबला करने के लिए तैयार रहने की ज़रूरत है. सरकार के सामने चुनौती यह तय करने की है कि उसकी कार्रवाइयां असरदास हों और किसी भी हाल में इस कठिन हालात को और न उलझाएं.

पाकिस्तान से एम. लोधी

feedback.chauthiduniya@gmail.com

वनवासी चेतना आश्रम को मिली विरोध की सज़ा

यह सरकारी गुंडागर्दी का क़िस्सा है. पिछली 17 मई को सुबह पांच बजे लगभग पांच सौ वर्दीधारियों की फौज ने दंतेवाड़ा जिले के कंवलनार गांव में स्थित वनवासी चेतना आश्रम के परिसर को घेर लिया. इसमें सीआरपीएफ, एसटीएफ और पुलिस के अलावा एसपीओ भी शामिल थे. सामान हटाने के लिए एक घंटे की मोहलत दी गई और उसके बाद साथ लाए गए बुलडोज़रों ने बरसों की मेहनत को ढहाना शुरू कर दिया. चार घंटे चली इस कार्रवाई में पूरा परिसर मलबे के ढेर में बदल गया. मौके पर मौजूद पत्रकार जावेद ने इस विध्वंस की तस्वीर उतारनी चाही, तो उन्हें बुरी तरह पीटा गया. संस्था से जुड़े दूसरे लोगों और अतिथियों को भी नहीं छोड़ा गया.

एक दिन पहले यानी 16 मई को दंतेवाड़ा के तहसीलदार ने नोटिस थमाई थी कि वनवासी चेतना आश्रम अपने परिसर को ख़ाली कर दे, वरना सरकारी ज़मीन पर उसके अतिक्रमण को हटा दिया जाएगा. नोटिस हाथों हाथ सौंपी गई, जिस पर 13 मई की तारीख़ दर्ज़ थी. लेकिन 16 मई को कोर्ट बंद था. मतलब कि क़ानूनी राहत की गुंजाइश कतई नहीं थी. साज़िश का यह बड़ा सबूत है.

फरवरी 2007 को जिला प्रशासन ने वनवासी चेतना आश्रम के ख़िलाफ़ गांव के जंगल पर अवैध क़ब्ज़ा करने का मामला दर्ज़ किया था. अदालत में यह मामला अभी चल ही रहा था कि पांच माह बाद राजस्व विभाग की ओर से ज़मीन ख़ाली कर देने का फरमान आ गया. जनवरी 2008 को इसी मामले के संदर्भ में जिला कलेक्टर की शिकायत पर सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट के तहत संस्था का रजिस्ट्रेशन रद्द कर दिए जाने की भी धमकी दी गई. और पिछले साल के आख़िर में संस्था का एफसीआरए (फॉरेन कंट्रीब्यूशन रेगुलेशन एक्ट) का रजिस्ट्रेशन सार्वजनिक हित में अस्थायी रूप से स्थगित कर दिया गया, और वह भी बग़ैर किसी ठोस कारण के, कि आख़िर संस्था की गतिविधियां किस तरह सार्वजनिक हित में नहीं हैं. इस तरह संस्था के वित्तीय स्रोतों का रास्ता रोक दिया गया.

और सच यह है कि कंवलनार की ग्राम सभा ने 1994 में बाक़ायदा प्रस्ताव पारित कर के यह ज़मीन वनवासी चेतना आश्रम को सौंपी थी. मतलब कि संस्थागत निर्माण पर बुलडोज़र चलाना दरअसल ग्राम सभा के फ़ैसले पर बुलडोज़र चलाना है, स्थानीय स्वशासन की मूल आत्मा को ध्वस्त करना है. इस कार्रवाई का इरादा महज़ जंगल की ज़मीन को संस्था के तथाकथित अतिक्रमण से मुक्त कराना नहीं था. यह संदेश देना भी था कि जो भी सरकार की राह में रोड़ा बनेगा और सरकारी कामकाज को कठघरे में खड़ा करेगा, इसे नानी याद करा दी जाएगी. बुलडोज़री कार्रवाई तो महज़ इस संदेश की वाहक थी.

देश के तमाम हिस्सों की तरह छत्तीसगढ़ में भी ज़्यादातर ग़ैर सरकारी संस्थाएं विकास की सरकारी धुन पर कदमताल करती नज़र आती हैं. अपने तयशुदा काम से काम रखती हैं–परियोजना प्रस्ताव, प्रगति रिपोर्ट, बहीखाता, प्रशिक्षण, नेटवर्किंग वगैरह तक सिमटी रहती हैं. समुदायों के सशक्तीकरण का जाप करती हैं, पंचायत राज से लेकर रोज़गार गारंटी कानून तक की बात करती हैं. लेकिन दमन के मामलों पर कन्नी काट जाती हैं. उनका काम विकास में जुटना है, किसी से पंगा लेना नहीं. बगल में आग लगी हो तो इनसे क्या? आग बुझाने में कहीं हाथ झुलस गए तो?

लेकिन ऐसा भी नहीं कि आतंक के साये में सबकी बोलती बंद है. मसलन, दंतेवाड़ा में वनवासी चेतना आश्रम ने उपेक्षित और वंचित आदिवासियों के हित–अधिकारों के लिए जूझना अपना दायित्व समझा. 1992 में अपने गठन के साथ ही संस्था ने आदिवासियों की आजीविका और प्राकृतिक संसाधनों पर उनके परंपरागत अधिकारों के सवालों को सतह पर लाना शुरू कर दिया था. 2005 में इस सिलसिले ने नया मोड़ लिया.

इसी साल दंतेवाड़ा में नए इस्पात संयंत्र की स्थापना के लिए टाटा का राज्य सरकार से करार हुआ और इसके चौबीस घंटे के भीतर सलवा जूडूम का जन्म हो गया. तय था कि प्राकृतिक संसाधनों का बेरहम दोहन होगा, पर्यावरण का सत्यानाश होगा, जल–जंगल–ज़मीन से असली वारिसों की बेदख़ली होगी और इनका जबरिया विस्थापन होगा. यह भी तय था कि इसका पुरज़ोर विरोध होगा और जिस पर काबू पाना आसान नहीं होगा. विकास के लिए उद्योग चाहिए और उद्योगों के लिए मुनाफ़ाख़ोर कंपनियों को भारी रियायत और सहूलियत चाहिए. उससे भी पहले शांति चाहिए.

सलवा जूडूम इसी ज़रूरत की उपज है. उसे भारी चिंता है कि आदिवासी गांवों में असुरक्षित हैं और उनका भला इसी में है कि उन्हें सलवा जूडूम के कैंपों में पहुंचा दिया जाए. बड़ी मुश्किल यह है कि आदिवासी इस ख़तरे को समझ नहीं पा रहे और अपने पहाड़–जंगल की गोद को छोड़ कर सलवा जूडूम की छत्रछाया में रहने को तैयार नहीं. इस इनकार का मतलब है कि आदिवासी नक्सली हैं या नक्सलियों के असर में हैं और उनके मददगार हैं. इसलिए गांवों पर धावा बोला जाएगा. घरों और खेत–खलिहानों को आग के हवाले किया जाएगा. सलवा जूडूम के पराक्रमी आदिवासी औरतों और लड़कियों पर अपनी मर्दानगी का जौहर दिखाएंगे. इसे चुपचाप देखना और भोगना होगा. वरना बलात्कार के बाद स्तन भी काटे जा सकते हैं. और जब जी करे तो बेगुनाह नागरिकों को ख़तरनाक नक्सली बता कर गोली से उड़ाया भी जा सकता है. सरकार बहादुर साथ हैं, तो फिर डर काहे का.

लेकिन वनवासी चेतना आश्रम ने विरोध का झंडा बुलंद किया. सरकारी जवाबदेही और सामाजिक न्याय का सवाल उठाया. साथ ही सलवा जूडूम के ख़ौफ़ से अपना गांव छोड़ कर भाग चुके आदिवासियों को उनके गांव वापस लाने की साहसिक मुहिम छेड़ी. उनकी सुरक्षा के लिए मानव ढाल के तौर पर कार्यकर्ताओं को तैयार किया. बावजूद इसके कि क़दम–क़दम पर सरकारी अड़ंगा था और सलवा जूडूम के हमले का भी ख़तरा था, संस्था की यह अनूठी कोशिश रंग लाई. आदिवासियों में हिम्मत भरी और नेंद्रा, लिंगागिरी, बसगुडा आदि गांवों के तमाम बाशिंदे लंबा निर्वासन भोग कर वापस लौटे.

दंतेवाड़ा जिले के पांच गांव के आदिवासियों ने सलवा जूडूम का यह फरमान नहीं माना कि गांव छोड़ो और शरणार्थी की ज़िंदगी जियो. बदले में सलवा जूडूम के कोई दो सौ लोगों ने गांवों पर हमला बोला. जम कर लूटपाट और मारपीट की और आख़िर में 19 आदिवासियों को गोली का निशाना बना दिया. इनमें चार महिलाएं भी थीं. इसी साल आठ जनवरी को हुए इस नरसंहार को नक्सलियों से मुठभेड़ का सरकारी नाम मिला. लेकिन वनवासी चेतना आश्रम ने इस सरकारी दावे का झूठ पकड़ने और इसे अदालत में चुनौती देने की ज़ुर्रत की.

लोगों का भरोसा जुटने लगा और चुप्पी टूटने लगी. बीते 29 मार्च को दंतेवाड़ा के पुलिस अधीक्षक के सामने पांच आदिवासी औरतों ने अपनी दुखभरी (और सभ्य समाज के लिए शर्मनाक भी) दास्तान बयां की कि एसपीओ ने किस तरह बंदूक की नोक पर दिनदहाड़े उन्हें सामूहिक बलात्कार का शिकार बनाया था. जिन्होंने इस धतकरम को रोकना चाहा, उन्हें बुरी तरह पीटा गया. अंधी बंदूक के आगे मिन्नतों की कब चलती है? यह हादसा कोई तीन साल पहले अलग–अलग दिनों में हुआ था. अब तक वे चुप थीं और सदमे में थीं. कोई रास्ता भी नहीं सूझ रहा था. वनवासी चेतना आश्रम की पहल ने इनमें इंसाफ हासिल करने की चाहत पैदा की. उन्होंने जाना कि चुप रहना गुनाहगारों की हिम्मत बढ़ाना है. ऐसी ही तमाम सकारात्मक उपलब्धियां हाथ लगीं.

बदल रहा मौसम राज्य सरकार के लिए ख़तरा बन गया और वनवासी चेतना आश्रम को उसकी बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ी. यह तो प्रतिबद्धता और समर्पण का सरकारी इनाम है, सही मायने में सामाजिक कार्य है. यह तो कबीर की बानी को आत्मसात करना है कि जो घर फूंके आपनो, चले हमारे साथ. वरना तो जो भी है, सामाजिक कार्य की दुकानदारी है, सत्ता प्रतिष्ठान की दलाली है और आख़िरकार ग़रीब–गुरबों के साथ केवल दग़ाबाज़ी है.

आदियोग
feedback.chauthiduniya@gmail.com

मीडिया न्यायालय की भूमिका न निभाए

व्यालोक

बीते सप्ताह काफी दिनों बाद मैं बुद्धू बक्से के सामने बैठने की ग़लती कर बैठा. बैठने और कई चैनल सर्फ करने के बाद केवल यही विचार दिमाग़ में आया कि जिस भी आदमी ने टीवी को बुद्धू बक्से का नाम दिया, वह कितना बुद्धिमान रहा होगा! उस आधे–पौन घंटे की अपनी ग़लती आप लोगों से साझा कर रहा हूं. हुआ यह कि टीवी खोलते ही एक ख़बरिया चैनल पर नज़र गई. ओह, माफ कीजिएगा, ख़बरिया चैनल कहना भी उनको एक तरह की गाली देना ही है, वे तो मनोरंजन चैनल का ही काम करते हैं. उस मनोरंजन/ख़बरिया चैनल के ऊपर ख़बरों के नाम पर किसी और चैनल के लाफ्टर शो की क्लिपिंग दिखाई जा रही थी. वैसे, ख़बर यह भी नहीं. यह तो आजकल आम हो गया है. ख़बर यह है कि वहां सुनाए गए चुटकुलों पर ठहाका लगा कर हंस रहे थे–राहुल महाजन. केवल हंस ही नहीं रहे थे, वह तो निर्णायक की कुर्सी पर बैठे थे, नंबर भी बांट रहे थे. जी हां, वही राहुल महाजन, जो कभी अपने ड्रग कांड, तो कभी अपनी पत्नी से मारपीट की ख़बरों को लेकर मीडिया में छाए रहे थे. वही राहुल बच्चों के सुनाए चुटकुलों पर फ़ैसला दे रहे थे. ख़बरिया चैनल की एंकर उन्हें बार–बार बच्चों का राहुल भैया कह रही थीं. ध्यान रहे कि यही चैनल कभी उनको पानी पी–पीकर कोस चुका था. यह भी याद दिला दें कि यह राहुल भैया वही हैं, जो तीन जून 2006 को, यानी अपने पिता प्रमोद महाजन की हत्या के ठीक एक महीने बाद ही दिवंगत प्रमोद के सचिव विवेक मोइत्रा के साथ दिल्ली की एक पार्टी में ड्रग्स का ओवरडोज़ लेकर अस्पताल में भर्ती हो गए थे. उसके बाद मीडिया के हमारे बड़े नामचीनों ने राहुल को कोसने में कसर न छोड़ी.

वैसे राहुल की रगों में ख़ून तो राजनैतिक पिता का ही है. उन्होंने धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा की. सब दिन होत न एक समान. उनका भी कायाकल्प हुआ. और जरिया या कहें औजार कौन बना यही हमारा मीडिया. उनको *बिग बॉस* नाम के रीयलिटी शो के जरिए जनता के बीच बदली छवि के साथ पेश किया. वैसे मज़े की बात यह कि वहां केवल राहुल नहीं थे, मोनिका भी थीं. अबू सलेम नाम के डॉन की प्रेमिका. और यहीं उनका कथित प्यार भी हुआ. राहुल को किशन कन्हैया भी बना दिया गया. वैसे, मेरे लिए अगला आश्चर्य तो अभी बाकी ही था. अगले चैनल पर मोनिका बेदी के किसी डांस शो की झलकियां चल रही थीं. यह वही मोनिका थीं जो कभी मीडिया में डॉन की प्रेमिका के नाम से ही पुकारी जाती थीं. जेल की यात्रा भी कर चुकी थीं. अब यही ख़बरिया चैनल उनके हर लटके–झटके पर मनोरम टिप्पणियां कर रहे थे. इसका मतलब क्या निकला? यही न कि हमारा मीडिया ख़ुद ही मुक़दमा दर्ज़ करता है और ख़ुद ही फ़ैसला भी करता है, कसूरवार भी वही ठहराता है और बेगुनाह भी. हर ख़बर और उसके आगे–पीछे की कहानी से रू–ब–रू कराने के दावे करने वाला मीडिया, ख़बर पर फ़ैसला भी ख़ुद सुना देता है. फ़ैसला भी एकदम भाग्यविधाता की तरह, चाहे तो किसी को हीरो बना दे या किसी को ज़ीरो. मीडिया आजकल मंथरा की भूमिका में नज़र आता है.

> **हर ख़बर और उसके आगे–पीछे की कहानी से रू–ब–रू कराने के दावे करने वाला मीडिया, ख़बर पर फ़ैसला भी ख़ुद सुना देता है. फ़ैसला भी एकदम भाग्यविधाता की तरह, चाहे तो किसी को हीरो बना दे या किसी को ज़ीरो. मीडिया आजकल मंथरा की भूमिका में नज़र आता है.**

कोई एक घटना हुई नहीं कि चरित्र निर्धारण करने का खेल शुरू हो जाता है. किस घटना पर मीडिया किसको दोषी करार दे दे, कहा नहीं जा सकता. मीडिया ने फ़ैसला दे दिया तो बिन मुक़दमे बिन कचहरी आप दोषी. मीडिया ब्रह्मास्ति.

दोषी का यह दोष कितना बड़ा है और उसे कब माफ़ी मिलेगी यह भी तय हो जाता है. वह चाहे तो आपकी सज़ा माफ़ भी हो सकती है. यह तो मीडिया और टीआरपी का गणित ही तय करता है कि किसकी कैसी इमेज बनानी है. अपनी सुविधा के हिसाब से ही किसी के गुण–दोष तय होते हैं. संजय दत्त जब मुंबई बम धमाकों के बाद जेल गए, तो मीडिया ने दाऊद से लेकर युसूफ नलीवाला तक के साथ उनके रिश्तों की पूरी पड़ताल कर दी. जब भी उनसे जुड़ा कोई विवाद उठा तो मीडिया ने उसे बढ़–चढ़ कर दिखाया. फिर संजय दत्त मुन्नाभाई बन गए, गांधीगीरी करने लगे. मुन्नाभाई हिट हुए तो मीडिया का मिज़ाज बदला, अब उनकी गांधीगीरी हिट ब्रांड बन गई तो मीडिया ने उसे हाथोंहाथ ले लिया. जब मुन्नाभाई को सज़ा हुई और लगा कि वह जेल में ही रहेंगे तो मीडिया ने ऐसी ख़बरें दिखाईं मानो कोई राष्ट्रीय आपदा आ गई हो. फिर वह राजनीति में उतरे तो भी ऐसा माहौल बना, मानो वह सबसे बड़े राजनेता हों, उनके चुनाव न लड़ने पर मातम–सा मनाया गया. मीडिया इस दौरान बड़ी चतुराई से यह भूल गया कि वह एक सज़ायाफ्ता व्यक्ति हैं और चुनाव में उतरे किसी दूसरे उम्मीदवार से कहीं भी अलग नहीं है. हालांकि, जनता ने अपना फ़ैसला सुना दिया है और मुन्ना भी घर को लौट आए. सलमान ख़ान भी मीडिया के पुराने चहेते हैं मीडिया अपनी इच्छा से उन्हें हीरो और विलेन बनाता रहता है. जब वह 1995 में चिंकारा शिकार कांड में फंसे तो उन्हें बैड ब्वॉय बना दिया गया, तो ऐश्वर्या राय से उनके रोमांस पर लवर ब्वॉय. फिर ऐश्वर्या से झगड़ा किया, तो विलेन, फिर अपनी लैंड क्रूजर से जब फुटपाथ पर पांच से अधिक ग़रीबों को कुचल दिया, तो उनके ख़िलाफ़ हंगामे की हद ही नहीं रही. वैसे, मीडिया बीच–बीच में इस तरह की ख़बरें भी देता रहा कि सलमान दरअसल वैसे नहीं हैं, वह तो दिल के बहुत अच्छे हैं, चैरिटी करते हैं, वगैरह–वगैरह. यह तो केवल चार बड़े नाम हैं, सूची तो अंतहीन है, संजीव नंदा से लेकर विकास और विशाल यादव तक ऐसे अनेक नाम हैं. अधिक दूर क्यों जाएं? आरुषि के मामले को भी तो अधिक साल नहीं हुए. मीडिया ने उस पूरे मामले पर जो तीन–पांच किया, वह सारे लोग जानते हैं. सीबीआई मामले पर काम कर रही थी, लेकिन मीडिया अपना फ़ैसला सुनाने से बाज नहीं आया. आरुषि के मां–बाप को उन्होंने पूरे समाज में बदनाम कराने में कोई कसर नहीं छोड़ी. ख़ुद न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठकर फ़ैसला सुना दिया कि डॉक्टर तलवार दोषी हैं.

इसके अलावा शिक्षिका उमा खुराना का मामला भी सबको याद ही होगा. मीडिया ने बिना आगे–पीछे सोचे उस महिला को बदनाम कर दिया. इस हद तक बवाल हुआ कि उसको जनता ने दौड़ा–दौड़ा कर पीटा और सरेआम उस शिक्षिका की बेइज़्ज़ती हुई. इन घटनाओं की सूची गिनाना हमारा मक़सद नहीं. हमारा सवाल केवल यही है कि मीडिया अपनी इस प्रवृत्ति से कभी बाज भी आएगा कि नहीं. आख़िर मीडिया के हमारे धुरंधर मित्र ख़ुद को ख़ुदा क्यों समझते हैं? बेहतर तो यही होगा कि वह न्यायालय को अपना काम करने दे. ख़ुद ही जज न बने.

vyalok.chauthiduniya@gmail.com

विंध्य की पहाड़ियों में कहर ढा रहा है फ्लोरोसिस

पारा है कि चढ़ता ही जा रहा है, गर्मी है कि बढ़ती ही जा रही है. इसके साथ ही आ रही है एक और मुसीबत. विंध्य की पहाड़ियों में बसे गांवों में तो यह संकट ख़ास तौर से गहरा गया है. यह आफत है पेयजल की. इन गांवों में पेयजल का संकट गहरा गया है. पानी की इस कदर कमी हो गई है कि लोग अपने हलक की प्यास बुझाने के लिए पानी में घुले ज़हरीले फ्लोराइड और कैल्सियम का सेवन कर रहे हैं. इससे वे फ्लोरोसिस की चपेट में आकर अपाहिज की ज़िंदगी जीने को मजबूर हैं. मौजूदा पीढ़ी की बात तो जाने ही दें. पैदा हो रही पीढ़ियां भी विकलांगता की चपेट में आ रही हैं.

विंध्य की पहाड़ियों में बसा सोनभद्र जनपद केंद्र और उत्तर प्रदेश सरकार की तरफ़ से राज्य का सबसे नक्सल प्रभावी जनपद घोषित हो चुका है. जनपद की तीन-चौथाई भूमि पर वन एवं चट्टानें हैं. यहां क़रीब 18 लाख की आबादी इन दिनों पानी के संकट से जूझ रही है. पिछले पांच सालों से सूखा पड़ने के कारण सोन, रेणु आदि बड़ी नदियों ने अपने जलस्तर को संकुचित कर लिया है. वहीं बेलन सरीखी छोटी-छोटी नदियां पशुओं की भी प्यास नहीं बुझा पा रही हैं. नालों और झरनों में बहती पानी की धारा सूख चुकी है. बांधों में जमा पानी कीचड़ में तब्दील हो गया है. लोगों के हलक की प्यास बुझाने वाले पारंपरिक स्रोत कुंओं ने भी लोगों का साथ देना छोड़ दिया है. कुछ में पानी है भी तो वह रसातल तक पहुंच चुका है. पेयजल की सुविधाओं का ढिंढोरा पीटने वाले ग़ैर-सरकारी संगठनों का प्याऊ भी पहाड़ियों में बसे गावों में दिखाई नहीं देता है. सरकारी मशीनरी के इंडिया मार्का हैंडपंप गांवों में अवश्य दिखाई देते हैं लेकिन पानी देंगे कि नहीं, इसकी कोई गारंटी नहीं. ऐसा सरकारी मशीनरी में फैले भ्रष्टाचार की वजह से है. हैंडपंप लगाने के लिए शासन से निर्धारित मानकों की अनदेखी कर कम बोरिंग की गई है. साथ ही बोरिंग में लगने वाली पाइप भी काग़ज़ों पर अंकित संख्या से कम लगाई गई है. ये 40-80 फीट तक कम हैं. रिपेयरिंग के बाद पाइपों की संख्या और भी कम हो गई है. इसके बावजूद कुछ हैंडपंप पानी दे भी रहे हैं तो इनके पानी में फ्लोराइड और कैल्सियम की मात्रा बहुत कम पाई जाती है. इस पानी को पीकर लोग बीमार हो रहे हैं.

जिला प्रशासन के आंकड़ों पर ग़ौर करें तो म्योरपुर, दुद्धी, चोपन और नभनी विकास खंडों के क़रीब डेढ़ दर्जन गांवों के पानी में फ्लोराइड की मात्रा 8-9 किलोग्राम प्रति लीटर है. यह विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लू एच ओ) द्वारा पेयजल में निर्धारित फ्लोराइड की अधिकतम मात्रा 1.5 मिलीग्राम प्रति लीटर से कहीं ज़्यादा है. म्योरपुर विकास खंड के कुस्महा, खैराही, किरवानी, रासपहरी, हरिपान आदि गांवों में फ्लोरोसिस ने ऐसा कहर ढाया है कि पैदा हो रही पीढ़ी भी विकलांगता की चपेट में आ रही है. कुस्महा निवासी 41 वर्षीय रामभजन का परिवार फ्लोरोसिस के कहर का शिकार बन चुका है. रामभजन की चार संतानों में तीन उत्तम (10 वर्ष), संगम (8 वर्ष) और रनिया विकलांगता की चपेट में ज़िंदगी गुजार रहे हैं. दुद्धी के कटौंधी, कटौली, मनबसा, चोपान के नेरूइयादामर, झिरंगादंडी, नई बस्ती, रोहनियादामर और बभनी के बकुलिया आदि गांवों में सैकड़ों लोग फ्लोरोसिस का शिकार हो चुके हैं. साथ ही कई लोग हाथ-पैर टेढ़े हो जाने के कारण विकलांग की ज़िंदगी जी रहे हैं. जंगल से लकड़ियों को चुनकर अपना पेट भरने वाले आदिवासियों के सामने फ्लोरोसिस के कहर से भूखों मरने की नौबत है. खदानों में दिहाड़ी मज़दूरी करने वाले धनाभाव के कारण अपने रोगों का इलाज तक नहीं करा पा रहे हैं.

इसके कारण कब उनकी ज़िंदगी दगा दे जाती है, इसका पता नहीं चल पाता और फ्लोरोसिस के कहर से मरने वालों के आंकड़े उपलब्ध नहीं हो पाते. विंध्य क्षेत्र के आदिवासियों और दिहाड़ी मज़दूरों की दयनीय हालत के बाद भी जिला प्रशासन के कान पर जूं तक नहीं रेंगती. अक्सर अपनी ज़िम्मेदारियों से पल्ला झाड़ने वाले जिला प्रशासन ने झिरंगादंडी में एक पेय जल टंकी का निर्माण जल निगम से करवाया है. लेकिन रख-रखाव की व्यवस्था नहीं होने के कारण टंकी का पानी दबंगों के खेत सींचने के काम आ रहा है. वहीं ज़रूरतमंद फ्लोराइड की अधिक मात्रा वाले पानी को पीकर विकलांग हो रहे हैं. किसी को नहीं पता कि यह सिलसिला आख़िर कब रुकेगा.

शिवदास

feedback.chauthiduniya@gmail.com

पिछले पांच सालों से सूखा पड़ने के कारण सोन, रेणु आदि बड़ी नदियों ने अपने जलस्तर को संकुचित कर लिया है. वहीं बेलन सरीखी छोटी-छोटी नदियां पशुओं की भी प्यास नहीं बुझा पा रही हैं.

नालों और झरनों में बहती पानी की धारा सूख चुकी है. बांधों में जमा पानी कीचड़ में तब्दील हो गया है. लोगों के हलक की प्यास बुझाने वाले पारंपरिक स्रोत कुंओं ने भी लोगों का साथ देना छोड़ दिया है. कुछ में पानी है भी तो वह रसातल तक पहुंच चुका है.

छोटी तुलसी में हैं बड़े गुण

तुलसी से हम सभी लोग परिचित हैं. यह अमूमन भारतीय घरों में पाया जाने वाला पौधा है. हिंदू घरों में तो ख़ैर इसे पूजा के लिए भी रखते हैं, लेकिन इसकी औषधीय महत्ता भी बहुत अधिक है. तुलसी कई प्रकार की होती है, जैस राम तुलसी, श्याम तुलसी और वन तुलसी.

तुलसी में एक तेल पाया जाता है, जो वाष्पशील होता है. इसका औषधीय उपयोग होता है. इसे तुलसी कपूर कहते हैं. इसमें विनोल तथा एलवेलाइट भी पाया जाता है. एस्कार्बिन एसिड और केरोटीन भी पाया जाता है. मलेरिया उपचार में इसका गिलोच नीम के साथ उपयोग किया जाता है.

बुख़ार में तुलसी दल और काली मिर्च का काढ़ा पीने से ज्वर का शमन हो जाता है. खांसी में तुलसी के पत्ते और अड़ूरा के पत्ते मिलाकर बराबर मात्रा में सेवन करने से लाभ होता है. कान दर्द में तुलसी का रस डालने से दर्द में बहुत आराम मिलता है. सरसों के तेल में तुलसी पत्र जलाकर रख लें. दो-दो बूंद डालने से कान के दर्द में आराम आता है.

बालों के झड़ने को रोकने व बाल काला करने के लिए तुलसी का रस, भृगंराज का रस और आंवले का रस मिला कर लगाने से ये बाल झड़ने बंद होकर काले हो जाते है. तुलसी मंजरी और काला नमक मिलाकर लगाने से बाल झड़ना बंद होकर काले हो जाते हैं. पीलिया रोग में पांच ग्राम तुलसी का पत्र और पांच ग्राम पुनर्नवा मूल मिलाकर पीना लाभदायक रहता है. दाद और खाज में तुलसी के रस को नीम के पत्ते के रस में मिला कर लगाएं. साथ ही नीम और तुलसी की पांच-पांच पत्तियां लगाएं. सड़े हुए घाव पर तुलसी का रस व फिटकरी बारीक़ पीसकर छिड़कने से आराम मिलता है. बिच्छू के काटने पर तुलसी के पत्ते को चार गुने जल में पीस कर पांच-पांच मिनट पर पिलाते रहने से आराम मिलता है.

गुर्दे की पथरी में तुलसीदल के रस में मधु मिलाकर सेवन करें. बहुत हिचकी आने पर तुलसी के रस में छोटी इलाइची के दाने पीस कर चाटने से आराम होगा. हैजे में तुलसी का काली मिर्च के साथ सेवन करने से भी अत्यंत लाभ होगा.

तो देखा आपने. एक छोटी सी तुलसी में कितने हैं गुण.

मलेरिया के उपचार में इसका गिलोच नीम के साथ उपयोग किया जाता है. बुख़ार में तुलसी दल और काली मिर्च का काढ़ा पीने से ज्वर का शमन हो जाता है. खांसी में तुलसी के पत्ते और अड़ूरा के पत्ते मिलाकर बराबर मात्रा में सेवन करने से लाभ होता है.

नीलम उपाध्याय पांडे

feedback.chauthiduniya@gmail.com

अगर हो साथ अदरक

अदरक का नाम सुनते ही जो पहली बात याद आती है, वह है अदरक वाली गरमागरम चाय. इस चाय के दीवाने तो बहुत हैं, लेकिन अदरक का महत्व बस चाय के प्याले तक ही नहीं है. अदरक एक औषधि का भी काम करता है और एक ब्यूटी प्रोडक्ट का भी. रोज़ाना अदरक का सेवन त्वचा के लिए बहुत फायदेमंद है. अदरक के औषधिय गुणों की चर्चा हमारी पुरातन चिकित्सा पद्धतियों में भरपूर है. आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा में अदरक के फ़ायदों की बात की गई है. इनमें से कुछ गुणों से तो हम पहले से वाक़िफ़ हैं, जैसे गले की ख़राश के लिए अदरक का महत्व सबको पता है. आइए, ख़ूबसूरती और सेहत के लिए फ़ायदेमंद अदरक के दूसरे गुण भी देख लें.

पेट की बीमारियों की काट : पेट दर्द और पाचन संबंधी कई समस्याओं के लिए अदरक रामबाण औषधि है. महिलाओं को माहवारी के वक़्त होने वाले दर्द से भी राहत दिलाता है. इसमें पेट को साफ करने के साथ ही कोलेस्ट्रॉल का स्तर कम करने, रक्त के थक्के जमने से रोकने, एंटी फंगल व कैंसर प्रतिरोधी गुण भी पाए जाते हैं.

बदहज़मी : यदि आप बदहज़मी की समस्या से जूझ रहे हैं तो रोज़ सुबह उठकर अदरक का एक छोटा टुकड़ा खाएं. नियमित रूप से ऐसा करने से आपको बदहज़मी नहीं होगी.

सीने में जलन : सीने में जलन की शिकायत हो तो अदरक चबाना शुरू कर दें. इससे आपको आराम मिलेगा.

मोशन सिकनेस : जर्मनी के विशेषज्ञों के अनुसार अदरक सबसे अचूक असर वाली हर्बल औषधि है. लैनसेट में हुए एक शोध के अनुसार मोशन सिकनेस को रोकने में अदरक अन्य दवाओं से ज़्यादा असरकारक है. इसके अलावा अदरक गले की ख़राश जैसी समस्या में भी राहत प्रदान करता है.

दर्द को दिखाए ठेंगा : अदरक की सबसे अहम ख़ूबियों में इसे गिना जाता है. यह बिना साइड इफेक्ट के किसी दर्दनिवारक दवा की तरह दर्द से निज़ात दिलाता है.

मॉर्निंग सिकनेस : ऑस्ट्रेलियाई शोधकर्ताओं के अनुसार अदरक गर्भवती महिलाओं को होने वाली मॉर्निंग सिकनेस (चक्कर आना, उल्टियां होना आदि) से भी निज़ात दिलाता है.

प्राकृतिक संरक्षक : अदरक में प्राकृतिक रूप से किसी भी चीज़ को प्रिज़र्व करने के गुण पाए जाते हैं. नाइज़ीरिया में हुए एक टेस्ट ट्यूब शोध के अनुसार अदरक का सत्व सालमोनेला नामक जीवाणु को ख़त्म करने में काफी असरकारक है. सालमोनेला किसी भी प्रिज़र्व किए खाद्य पदार्थ को ख़राब कर देता है.

फैट कम करने में सहायक: अदरक का यह गुण निश्चित रूप से मोटापे के शिकार व्यक्तियों के लिए राहत देने वाला है. हालांकि इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि अदरक कुछ हद तक ही फैट को बर्न करता है.

राशिफल

(1 जून से 7 जून तक)

मेष 21 मार्च से 20 अप्रैल
आप इस सप्ताह विशेष ऊर्जा और उत्साह से परिपूर्ण रहेंगे. कुछ ऐसे कार्य निपटेंगे जिन्हें आप टाल रहे थे. इसके लिए आपको संपर्कों और मेलजोल को बढ़ाने की ज़रूरत है. अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने का यह सही समय है. ज़्यादा सोचने से कुछ हासिल नहीं होगा. व्यावसायिक मामलों में जो नई योजनाएं आप बना रहे हैं, वह सफल रहेंगी.

वृष 21 अप्रैल से 20 मई
आपके आसपास कई लोग हैं जो आपके शुभचिंतक होने का दावा करते हैं, असली और नक़ली की पहचान ध्यान से करें. कार्यस्थल पर परेशानियां बढ़ेंगी, लेकिन आत्मविश्वास न खोएं. यात्रा का कार्यक्रम बनाने से पहले सभी परिस्थितियों को जांच लें. आर्थिक और व्यावसायिक मामलों में निवेश और पूंजी से जुड़े आपके प्रयास सफल हो रहे हैं.

मिथुन 21 मई से 20 जून
ऐसा स्थितियां बन रही हैं कि आपको हर काम में सफलता मिलेगी. रुके हुए कार्य भी बनते जा रहे हैं, लेकिन इस बहाव में ख़ुद का ध्यान रखें. स्वास्थ्य गड़बड़ा सकता है. बाहर पार्टी करने से बेहतर होगा कि उस जीवनसाथी के साथ वक़्त बिताएं जिससे आपको सहयोग मिलता है. व्यवसाय में भी मुनाफ़ा कमाने के उपाय नज़र आएंगे, धैर्यपूर्वक कार्य करें.

कर्क 21 जून से 20 जुलाई
आपको परेशानियों का चौतरफा सामना करना पड़ेगा. परिवार और कार्यस्थल दोनों जगहों पर विवाद हो सकते हैं. कोई बड़ा भी आपके विरोध में खड़ा हो सकता है. ध्यानपूर्वक मामले को निपटाएं वरना विरोधी इस का लाभ उठाएंगे. यात्रा का कार्यक्रम भी बन सकता है. व्यावसायिक मामलों में बिना कारण के ख़र्चों से बचें.

सिंह 21 जुलाई से 20 अगस्त
आप जो भी करते हैं, उसमें अपना पूरा परिश्रम लगाते हैं. अब समय आ गया है कि इसका फल आपको प्राप्त हो. आपकी प्रतिष्ठा और स्थिति में बढ़ोतरी होगी. हालांकि परिश्रम के साथ-साथ स्वास्थ्य पर भी ध्यान देते रहें. व्यावसायिक मामलों में आप धैर्यपूर्वक सभी निवेशों पर नज़र बनाए रखें, बड़ा लाभ मिल सकता है.

कन्या 21 अगस्त से 20 सितंबर
जीवन में परेशानियां तो आती-जाती रहती हैं, उनसे निराश होने की ज़रूरत नहीं है. हर असफलता के साथ सफलता जुड़ी होती है, जिसका आनंद उठाएं. यात्रा के लिए यह समय सही है. इस सप्ताह प्रतियोगी भी आपके सामने झुक रहे हैं. बस, ख़ुद पर भरोसा रखें. व्यावसायिक मामलों में भी तरक्की होगी.

तुला 21 सितंबर से 20 अक्तूबर
जिन विवादों पर बात बिगड़ती नज़र आ रही थी, इस सप्ताह वे सारे विवाद बातचीत से हल होते जाएंगे. साथी और सहयोगी अब पूरी तरह से आपके साथ हैं, आपकी व्यस्तता में उनका सहयोग महत्वपूर्ण रहेगा. आप इस हफ्ते घर और काम दोनों जगहों पर व्यस्त रहेंगे. व्यवसाय पर ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है.

वृश्चिक 21 अक्तूबर से 20 नवंबर
यह सप्ताह शुभ कार्यों के लिए अच्छे शगुन लेकर आ रहा है. सितारों के सहयोग के साथ आपके अपने प्रयास से ही सफलता मिलेगी. कहीं यात्रा पर जाने का भी योग बनने की संभावना है. मन शांत रखें. व्यापार और आर्थिक क्षेत्र में कुछ परेशानियां आ सकती हैं, उनका सामना सूझबूझ और धैर्य से करें.

धनु 21 नवंबर से 20 दिसंबर
सितारे कुछ ऐसी स्थितियां बना रहे हैं जो आपके लिए लाभकारी हैं. आपके सम्मान और प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी. कुछ परिणाम निराशाजनक हो सकते हैं लेकिन घबराएं नहीं. सफलता भी देर-सवेर आ जाएगी. ज़्यादा सोचने की ज़रूरत नहीं है. व्यवसाय में किए जा रहे प्रयासों के सफल होने का योग बन रहा है.

मकर 21 दिसंबर से 20 जनवरी
इस राशि के जातकों के लिए भरपूर सफलता का योग है. न केवल परिवार बल्कि कार्यस्थल पर भी सहयोग और फ़ायदा मिलेगा. आपके विचार सुने जाएंगे और आर्थिक सहयोग भी मिलेगा. दुर्घटना से बचें. जहां तक व्यावसायिक मामलों की बात है तो नई संपत्तियां ख़रीदने पर ज़ोर हो सकता है.

कुंभ 21 जनवरी से 20 फरवरी
जीवन में महत्वाकांक्षा बहुत ज़रूरी है, लेकिन बिना पारिवारिक सुख और स्वास्थ्य के महत्वाकांक्षा का कोई मूल्य नहीं. हालांकि आप मेहनत कर रहे हैं जिसका असर भी आपके जीवन पर नज़र आ रहा है. लेकिन दूसरों का सहयोग लेने से न हिचकिचाएं. व्यावसायिक मामलों में भी सुधार आएगा.

मीन 21 फरवरी से 20 मार्च
जिस प्रयास में आप लगे हैं वह सफल हो रहा है, बधाई हो. साथ ही स्वास्थ्य में सुधार भी हो रहा है. कहीं से सुखद समाचार भी मिलेगा. किसी कार्य में नवीनता आपको लाभ देगी. व्यावसायिक मामलों में आप से अपेक्षा है कि आप जटिलता से काम न कर ठंडे दिमाग़ से काम लें.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

अमेरिका की अफ़-पाक पॉलिसी पैसा फेंक, तमाशा देख

नईमा परवेज़

अमेरिकी फौज के चेयरमैन ज्वाइंट चीफ ऑफ स्टाफ एडमिरल माइक मुलेन ने 21 मई को अमेरिकी सीनेट की विदेश मामलों की समिति के सामने अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान के हालात का खुलासा करते हुए कहा है कि अगर अमेरिकी या नाटो फौजें अफ़ग़ानिस्तान में तालिबान पर दबाव बढ़ाती हैं तो तालिबानी पाकिस्तान की तरफ़ जाएंगे और वहां पाकिस्तानी फौज, जो पहले ही पाकिस्तानी तालिबान के ख़िलाफ़ ऑपरेशन कर रही है, मुश्किल में पड़ जाएगी. इसका मतलब है कि अब अमेरिकी और नाटो फौजें अपनी जान बचाते हुए तालिबान के ख़िलाफ़ ऑपरेशन की पूरी ज़िम्मेदारी पाकिस्तानी फौज पर डाल देंगी.

इस साल अगस्त में अफ़ग़ानिस्तान में राष्ट्रपति का चुनाव होना है. मुलेन के बयान का मतलब साफ है कि अमेरिकी फौज पाकिस्तान में जंग भड़का कर अफ़ग़ानिस्तान में शांतिपूर्ण चुनाव करवाना चाहती है. इस पूरे मामले में अमेरिकी कहां तक सफल होते हैं यह तो आने वाला वक़्त ही बताएगा, लेकिन एक बात तय है कि इस पॉलिसी का असर पाकिस्तान में अच्छा नहीं होगा जहां पहले ही स्वात, बुनेर, दीर और सूबा सरहद के अन्य इलाक़ों में तालिबान के ख़िलाफ़ पाकिस्तानी फौज की कार्रवाई के कारण तक़रीबन 20 लाख लोग बेघर हो चुके हैं. कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि अब अमेरिका अपने तथाकथित *वॉर ऑन टेरर* का केंद्र बिंदु अफ़ग़ानिस्तान से हटा कर पाकिस्तान को बनाना चाहता है ताकि अफ़ग़ानिस्तान में भारी नुकसान से बचते हुए पाकिस्तानी फौज को इस दलदल में धकेला जा सके. अमेरिकी सरकार और फौज की तरफ़ से आने वाले बयानों में इस मामले को लेकर इतने विरोधाभास हैं कि यह पता ही नहीं चलता है कि अमेरिकी पाकिस्तान को मदद कर रहे हैं या ख़ुद बचने के लिए उसे दलदल में धकेल रहे हैं. अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने हाल ही में अफ़ग़ान राष्ट्रपति हामिद करज़ई और पाकिस्तान के आसिफ़ ज़रदारी को एक साथ वाशिंगटन बुलाकर शायद यही हिदायत दी है अफ़-पाक के नाम पर वे जो कुछ कर रहे हैं उस पर दोनों को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, ताकि वह इस पूरे क्षेत्र में अपना खेल आसानी से खेल सकें.

पाकिस्तानी फौज की कार्रवाई अगर लंबी चलती है तो यह आने वाले दिनों में पाकिस्तान के लिए कई और परेशानियां खड़ी करेंगी. 1980 के दशक में सोवियत यूनियन के ख़िलाफ़ अमेरिकी मदद से छेड़े गए पाकिस्तानी जिहाद के चलते कई लाख अफ़ग़ान पाकिस्तान में आकर बस गए थे. इनकी काफी बड़ी संख्या अब भी पाकिस्तान में बसी हुई है. अब कबीलाई इलाक़ों से होने वाले लाखों लोगों का पलायन, पाकिस्तान के दूसरे इलाक़ों में कई तरह की सामाजिक और आर्थिक समस्याएं खड़ी करेगा. पाकिस्तानी पंजाब की सरकार ने अपने यहां रिफ्यूजी कैंप बनाने से पहले ही मना कर दिया है. उसका कहना है कि वह सूबा सरहद में बनने वाले कैंपों को आर्थिक सहायता तो देगा, लेकिन अपने यहां उन लोगों को बसाने की अनुमति नहीं देगा. इसलिए कि अफ़ग़ानिस्तान से आने वाले लोगों के कारण हुई घटनाओं को वहां दोहराया न जाए. सिंध में पहले ही इस बात को लेकर काफी चिंता है और सिंध में भी रिफ्यूजी कैंप नहीं बन पाएंगे.

बलूचिस्तान में पहले ही हिंसात्मक कार्रवाईयां रोज़ के मामले हैं और यहां भी रिफ्यूजी कैंप लगाना संभव नहीं होगा. सूबा सरहद के दूसरे इलाक़ों में, जहां अभी तक शांत माहौल है, इतनी संख्या में लोगों को बसाना आसान नहीं होगा. अभी तक की ख़बरों के अनुसार 20 लाख लोगों में से केवल 20 प्रतिशत लोग ही कैंपों में बसाए गए हैं और बाक़ी सब या तो अपने दोस्तों या रिश्तेदारों के यहां रह रहे हैं. समस्या गंभीर है और पाकिस्तान सरकार के पास विकल्प कम हैं. अगर बीबीसी की एक रिपोर्ट को सच मानें, जिसमें यह कहा गया है कि सूबा सरहद के उत्तर-पश्चिम का केवल 38 प्रतिशत भाग पाकिस्तान के कंट्रोल में है और 24 प्रतिशत तालिबान के कंट्रोल में, तो फिर विकल्प और भी कम हो जाते हैं. बाक़ी 38 प्रतिशत में तालिबान की स्थायी मौजूदगी बताई गई है. पंजाब सरकट के पलायनकारों को न बसाने के पीछे एक वजह यह भी हो सकती है कि इस सूबे का 47 प्रतिशत भाग सूबा सरहद से जुड़ा हुआ है और इस कारण से आने वाले दिनों में तालिबान की पंजाब में कार्रवाई की संभावनाओं को नकारा नहीं जा सकता.

पाकिस्तान से अफ़ग़ानिस्तान तक चल रहे इस खेल में अमेरिकी भूमिका संदिग्ध है. ज़रदारी के सात मई के वाशिंगटन के दौरे से पहले तक, ओबामा का यह कहना था कि पाकिस्तानी की निर्वाचित सरकार बहुत कमज़ोर है. जब ज़रदारी ने स्वात और दूसरे इलाक़ों में तालिबान के विरुद्ध कार्रवाई करने की हामी भर ली तो अमेरिकी सरकार ने पाकिस्तान की आतंकवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई में स्वात सहायता के लिए डॉलरों की बारिश शुरू कर दी. लेकिन यह सहायता पाकिस्तान को आने वाली कठिनाइयों से कैसे बचा पाएगी, यह एक अहम सवाल है. आज के तालिबानी आतंकवादी और कल के सोवियत यूनियन के विरुद्ध लड़ने वाले जिहादी एक ही हैं और यह अमेरिका को अच्छी तरह से मालूम है. अमेरिकी ख़ुफिया एजेंसी सीआईए ने 20 सालों तक इन जिहादियों को पाला-पोसा है और वे उनके एक-एक ठिकाने को जानते हैं, लेकिन फिर भी पिछले आठ वर्षों से जब अफ़ग़ानिस्तान में वे नाटो के साथ मिलकर इन लोगों को काबू में नहीं कर सके, तो पाकिस्तानी फौज किस तरह से तालिबान के विरुद्ध कामयाब हो पाएगी. पाकिस्तान में शुरू होने वाली यह लड़ाई आसानी से ख़त्म होने वाली नहीं है और ऐसा लगता है कि यह अमेरिका के इस क्षेत्र में खेले जाने वाले खेल का महत्वपूर्ण हिस्सा है.

यह बात इसलिए भी कही जा सकती है क्योंकि अफ़ग़ानिस्तान में 1994 के दशक में उभरने वाले तालिबान और पाकिस्तान में एकदम पैदा होने वाले तालिबान में एक बुनियादी फ़र्क़ है. अफ़ग़ानिस्तान में तालिबान उस वक़्त उभरा था जब अफ़ग़ानिस्तान सोवियत यूनियन की फौजों की वापसी के बाद अराजकता का शिकार था. उस वक़्त तालिबान ने अफ़ग़ानिस्तान में स्थिरता लाने के लिए चीज़ों को अपने कंट्रोल में लेना शुरू किया था. बाद में क्या हुआ यह एक अलग कहानी है. पाकिस्तान में बनने वाले तालिबान की बुनियाद अबदुल्ला महसूद ने रखी जो ग्वांतानामो बे में अमेरिकी फौज का कैदी था और उसे बड़ी विचित्र परिस्थितियों में रिहा किया गया था. बाद में वह मारा गया और उसे किसने मारा, इस पर अभी पर्दा पड़ा हुआ है. तालिबान का मौजूदा मुखिया बैतुल्लाह महसूद उसी अब्दुल्लाह महसूद के ख़ानदान से है जिस ने अब्दुल्लाह की मौत के बाद तालिबान की बागडोर संभाली.

सवाल यह है कि अगर पाकिस्तानी फौज की तालिबान के ख़िलाफ़ कार्रवाई सफल हो जाती है, जो इतना आसान नहीं है, तो फिर क्या होगा. क्या पाकिस्तानी फौज अफ़ग़ानिस्तान में भी तालिबान के विरुद्ध ऑपरेशन करेगी? यह भी हो सकता है कि इस तरह की ख़बरें आने लगे कि पाकिस्तानी तालिबान अफ़ग़ानिस्तान की तरह भाग रहे हैं और पाकिस्तानी फौज उनका पीछा करते हुए अफ़ग़ानिस्तान में भी ऑपरेशन शुरू कर रही है. अगर ऐसा होता है तो अमेरिकी और नाटो की फौजें अपने आप को बचाते हुई अफ़ग़ानिस्तान में तालिबान के विरुद्ध कार्रवाई की पूरी ज़िम्मेदारी पाकिस्तानी फौज पर डाल देंगी और ख़ुद तमाशा देखेंगी. पैसा फेंक तमाशा देख का इस से बढ़िया उदाहरण और क्या हो सकता है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

सभी फोटो-*पीटीआइ*

उत्तर कोरिया ने दिखाया दुनिया को ठेंगा

जब उत्तर कोरिया के परमाणु परीक्षण की ख़बर आई होगी तो जार्ज बुश टेक्सास के अपने फार्म हाउस में बैठे मुस्कुरा रहे होंगे. जब आठ साल पहले उन्होंने उत्तर कोरिया को अपने प्रसिद्ध *एक्सिस ऑफ एविल* का हिस्सा बताया था, तो उनकी आलोचना हुई थी. उस घोषणा के बाद से अब तक उत्तर कोरिया ने दो परमाणु परीक्षण और कई मिसाइल परीक्षण कर दिए हैं. अब बुश यह दावा भी कर सकते हैं-देखा, मैं न कहता था.

हालांकि जब इस 24 मई को उत्तर कोरिया ने अपना दूसरा सफल परमाणु परीक्षण किया तो बुश के उत्तराधिकारी बराक ओबामा ने इसकी भर्त्सना करने में वक़्त नहीं गंवाया, लेकिन उनके बयान से साफ लगा कि यह कोई अप्रत्याशित बात नहीं थी. हालांकि ऐसी घटनाएं उत्तर कोरिया की पुरानी आदत में शुमार रही हैं. दवाब और आश्चर्य की रणनीति उसकी पसंदीदा रही है. दरअसल जब भी बातचीत में गतिरोध आता है तब उत्तर कोरिया सरकार ने इस तरह के क़दमों से विश्व पर दवाब बढ़ाया है. इस वर्ष अप्रैल में छह-पक्षीय वार्ता में आए गतिरोध के बाद से उसने फिर वही रुख़ अपना लिया है. पहले उसने मिसाइल परीक्षण की कोशिश की और अब यह परमाणु परीक्षण सामने आया है. पिछली बार 2006 के परीक्षण के बाद अमेरिका ने उसे कई रियायतें दी थीं, उत्तर कोरिया शायद इस बार भी ऐसा कुछ होने की उम्मीद कर रहा है. संयुक्त राष्ट्र और बाकी दुनिया भले ही इस परीक्षण की निंदा कर रहा हो और उत्तर कोरिया पर संयुक्त राष्ट्र ने कुछ प्रतिबंध और लाद दिए हैं, लेकिन देर-सबेर मामला बातचीत की ओर लौट जाएगा. कोरिया भी शायद यही उम्मीद कर रहा है.

भारत ने भी इस परीक्षण की निंदा की है लेकिन उसकी सबसे बड़ी चिंता बाज़ार से जुड़ी है. पहले से ही आर्थिक मंदी से जूझ रहे एशियाई बाज़ारों में इन परीक्षणों से विदेशी पूंजी निवेशकों का भरोसा घट सकता है. परीक्षण की ख़बर आते ही भारतीय रुपया सप्ताह में पहली बार लुढ़क गया. भारत के लिए एक अशांत कोरिया परेशानी का सबब होगा. उसकी उम्मीद है कि परमाणु परीक्षण का यह मामला तनाव को और नहीं बढ़ाएगा और एशियाई बाज़ारों को ज़रूरी स्थायित्व मिल सकेगा. उधर कोरियाई राजनीति में इस हलचल को उत्तर कोरियाई राष्ट्रपति किम जोंग-इल के गिरते स्वास्थ्य से जोड़कर देखा जा रहा है. किम का स्वास्थ्य ठीक नहीं है और कयास हैं कि वह जल्दी ही अपना उत्तराधिकारी चुनने वाले हैं. ऐसे में वह इन परीक्षणों से अपने उत्तराधिकारी के लिए ज़मीन तैयार करते दिख रहे हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

नेपाल ने ख़त्म किया राजनीतिक गतिरोध

नेपाल में लंबे समय से चल रहे राजनीतिक संकट पर विराम लग गया. नेपाल की तीसरी बड़ी पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी-एकीकृत मार्क्सवादी लेनिनवादी (सीपीएन-यूएमएल) के नेता माधव कुमार नेपाल ने प्रधानमंत्री का कामकाज संभाल लिया है. इसके साथ ही सेना प्रमुख रूकमांगद कटवाल की बर्ख़ास्तगी के मुद्दे पर शुरू हुआ राजनीतिक बवाल शांत हो गया है. ग़ौरतलब है कि सेना में पूर्व माओवादियों की भर्ती का विरोध करने पर पूर्व प्रधानमंत्री पुष्प दहल कमल उर्फ प्रचंड ने कटवाल को बर्ख़ास्त कर दिया था. प्रधानमंत्री के रूप में प्रचंड द्वारा लिए गए इस फ़ैसले पर राष्ट्रपति रामबरन यादव ने रोक लगा दी थी, जिससे नाराज़ होकर प्रचंड ने इस्तीफ़ा दे दिया था. देश में राजशाही समाप्त कर लोकशाही लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले प्रचंड के इस रुख़ से संवैधानिक संकट खड़ा हो गया था. इसलिए कि वह और उनकी पार्टी-सीपीएन-माओवादी-संसद चलने ही नहीं दे रही थी. इस संकट को हल करने के लिए विदेशी राजनयिकों को भी हस्तक्षेप करना पड़ा, तब जाकर संसद में बहुमत रखने वाले माधव कुमार नेपाल के लिए प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने का रास्ता साफ हो सका. लेकिन प्रधानमंत्री की गद्दी संभालने के बाद अब उनको माओवादियों से निपटना होगा, जिनमें सत्ता से हटाए जाने के कारण काफी रोष है. वैसे इस समय माओवादियों ने प्रधानमंत्री की चुनाव-प्रक्रिया का विरोध किया. एक बात यह भी है कि नेपाल की दूसरी बड़ी पार्टी नेपाली कांग्रेस अभी निश्चय नहीं कर पाई है कि वह मंत्रिमंडल में शामिल होगी या नहीं.

बिहार के सीतामढ़ी के मूल निवासी माधव नेपाल पहले भी एक बार 1994 में सीपीएन-यूएमएल के नेतृत्व में नौ महीने तक चली अल्पमत सरकार में उप प्रधानमंत्री रह चुके है. वह गृहमंत्री भी रह चुके है. साथ ही संसद में विपक्ष के नेता की भूमिका भी निभा चुके है. वैसे नेपाल में 601 सदस्यीय संविधान सभा में सीपीएन-माओवादी 238 सदस्यों के साथ सबसे बड़ा दल है. इसके बाद नेपाली कांग्रेस के 112, सीपीएन-यूएमएल के 108, एमपीआरएफ के 53,तराई मधेसी डेमोक्रेटिक पार्टी के 21 और सद्भावना पार्टी के 9 सदस्य हैं. माधव कुमार का भारत से भी पुराना नाता रहा है. उनके पुरखे क़रीब 200 साल पहले भारत से जाकर नेपाल में बस गए थे. उनका जन्म 6 मार्च, 1953 को काठमांडू के निकट राउताहट जिले के गौर कस्बे के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था. उन्होंने बिहार के सीतामढ़ी जिले के गोयनका कॉलेज से शिक्षा प्राप्त की है. मातृभाषा नेपाली के अलावा हिंदी, अंग्रेज़ी, मैथिली और भोजपुरी पर भी उन्हें अच्छा अधिकार हासिल है. साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित और कम उम्र में ही राजनीति में आ गए माधव कुमार कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ नेपाल के संस्थापक सदस्यों में से रहे हैं. अपने जीवन में उन्होंने कम उम्र में बहुत ज़्यादा कामयाबी हासिल कर ली थी. पिछले साल की संविधान सभा के चुनाव में दो-दो सीटों से पराजय उनके लिए बहुत बड़ा झटका था. इससे उनको बहुत ही निराशा हासिल हुई थी. इस हार की वजह से ही नैतिक ज़िम्मेदारी लेते हुए उन्होंने 12 अप्रैल 2008 को पार्टी प्रमुख पद से इस्तीफ़ा दे दिया था. अब जीत के बाद ही राजनीति में वापसी की है. और, आज उन्हें देश का प्रधानमंत्री बनने का दुर्लभ गौरव भी हासिल हो गया है. वह भारत समर्थक माने जाते हैं. निश्चय ही यह जीत और सम्मान उनके लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है, जो उनकी राजनीति की दिशा को बदल देगी. नेपाल की राजनीति में उनका लंबा अनुभव और शांति प्रक्रिया के प्रति उनकी प्रतिबद्धता ही देश की मुश्किल सियासी राह पर उनके काम आएगी. नेपाली राजनीति में प्रभावशाली माने जाने वाले माधव कुमार नेपाल राष्ट्र विकास के लिए हिंसक आंदोलनों के बजाय शांति प्रक्रिया के हिमायती माने जाते हैं. उन्होंने बहुत समय पहले देश में जारी गृह युद्ध के समय सरकार और माओवादियों से शांति समझौते की वकालत की थी. उन्होंने यूएलएफ के बैनर तले लोकतंत्र की बहाली के लिए 1990 में चले आंदोलन में भी भाग लिया. साथ ही 2006 में नेपाल नरेश के शासन को ख़त्म करने के लिए चले जनांदोलन में भी सक्रिय रहे थे. वह उन नेताओं में से एक थे जिन्होंने बिना किसी की परवाह किए नवंबर 2005 में माओवादियों और राजनीतिक दलों के बीच हुए 12 सूत्री समझौते पर भी हस्ताक्षर किए थे.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

तालिबान को लिट्टे से सबक़ लेना चाहिए

राहुल मिश्र

लिट्टे और श्रीलंका सेना के बीच चली दो घंटे की गोलाबारी और आख़िरकार एक एंबुलेंस पर रॉकेट लांचर के हमले में प्रभाकरण के मारे जाने के साथ तीन दशक से भी अधिक समय से जारी गृहयुद्ध ख़त्म हो गया. उसकी मौत से विश्व के एक कोने में पनप रहे आतंकवाद के सबसे ख़तरनाक संगठन का सफ़ाया हो गया. लिट्टे के इस अंत के बाद आज वक़्त है कि दुनिया भर के आतंकी संगठन एक बार फिर सोचें कि आतंक की इस दुनिया में वह किस मुकाम तक पहुंच सकते हैं. ख़ास तौर पर पिछले पांच सालों में लिट्टे और अलक़ायदा की बढ़ती नज़दीकी को देखते हुए अलक़ायदा और तालिबान के लिए ज़रूरी हो जाता है कि वह लिट्टे के इस हश्र से सबक़ ले और हज़ारों लाखों बेगुनाहों की ज़िंदगी को दांव पर लगाने से बाज आएं.

1975 में लिट्टे की स्थापना के बाद, प्रभाकरण ने लिट्टे को आतंक की दुनिया के शिखर पर पहुंचाया. मानव बम का इस्तेमाल कर लिट्टे ने दुनिया भर को स्तब्ध कर दिया. महिलाओं और बच्चों को आतंक के खेल में सबसे पहले लिट्टे ने ही शामिल किया. किसी सेना के अलावा अगर टाइम बम पर किसी ने महारत हासिल की, तो वह लिट्टे ही था. इसके साथ ही लिट्टे दुनिया का पहला आतंकी संगठन बना जिसके नुमाइंदे बाक़ायदा किसी सरकारी अमले की तरह ही विदेशों में लिट्टे की नीतियों का प्रचार-प्रसार कर रहे थे. अपने बढ़ते ग्राफ में लिट्टे के पास वह सब कुछ था जो दुनिया के किसी भी आतंकी संगठन को अपनी ओर आकर्षित करता है. यही वजह रही कि हिज़बुल्लाह और अलक़ायदा जैसे संगठन शुरू से ही लिट्टे को आदर्श मानते रहे और उसके नक्शे क़दम पर ही आतंक फैलाने के सपने देखने लगे. लिट्टे, श्रीलंका के तमिल अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व का दावा करता था. वह श्रीलंका को तोड़कर एक अलग राष्ट्र-राज्य चाहता था. बहुसंख्यक सिंहलियों के ख़िलाफ़ सशस्त्र युद्ध छेड़े हुआ था. अपनी आतंकी कार्रवाइयों में लिट्टे ने श्रीलंका के बड़े नेता और फौजी अफसरों पर कई हमले किए. दिल को दहला देने की हद तक ख़तरनाक. 1991 में एक महिला मानव बम के जरिए राजीव गांधी की हत्या को अंजाम देने के बाद लिट्टे का आतंक पूरी दुनिया में फैल गया. 20 देशों की सरकारों ने लिट्टे को प्रतिबंधित आतंकी संगठन करार दिया. ईलम की मांग को जायज़ मान रहे देश भी उससे अलग हो गए. अपने आतंक के जरिए लिट्टे अपने-आप को किसी भी देश के बराबर ही ताक़तवर समझने लगा. उसे यह अहसास नहीं हुआ कि इन वारदातों ने दुनिया के सामने उसका वास्तविक मक़सद भी लाकर रख दिया. दुनियाभर के देशों को समझ में आ गया कि ईलम की मांग से आतंकी संगठन का कोई सरोकार नहीं है. वह महज़ व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने की कोशिश में है.

तीन दशकों से भी ज़्यादा लंबे समय तक श्रीलंका ने अल्पसंख्यकों की मांग को (अधिक स्वायत्तता और संघीय ढांचे के प्रशासन की) दरकिनार किए रखा. इसके चलते तमिल अल्पसंख्यक ख़ुद को श्रीलंकाई मुख्यधारा से नहीं जोड़ सके. अल्पसंख्यकों के आक्रोश को संचालित कर लिट्टे ने ईलम की मांग को आतंक के जरिए पाने की रणनीति बनाई. अपने 35 साल के इतिहास में लिट्टे ने कई जीतें दर्ज़ कीं. कई ख़ूंख़ार कारनामे किए. श्रीलंका की एक तिहाई सीमा पर उसने अपना वर्चस्व कायम किया, जिससे उन इलाकों में श्रीलंका सरकार के वजूद को ही मिटा दिया. अंतरराष्ट्रीय नेटवर्क बढ़ाया और हथियारों का जुगाड़ किया. अपने क़ब्ज़े के श्रीलंकाई इलाक़े से अर्जित हो रही आर्थिक संपदा से आतंक का सामान ख़रीदा. धीरे-धीरे वह दुनिया का पहला आतंकी संगठन बन गया जिसके पास किसी राज्य की सेना से लड़ने के लिए वायु सेना के साथ नौसैनिक क्षमता तक आ गई.

उधर, 9-11 हमले से आतंक की दुनिया में एक नया नाम जुड़ गया. अलक़ायदा नाम का संगठन दुनिया के सबसे शक्तिशाली देश अमेरिका के सुरक्षा तंत्र को भेदने में कामयाब हुआ. इस घटना ने दुनिया भर के सामने आतंक की एक नई और घिनौनी तस्वीर पेश की. इस तस्वीर के पीछे भी नफरत की वही आग है, जिसकी वजह से श्रीलंका, इज़राइल, अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान सुलग रहे हैं.

वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हुए आत्मघाती हमले में हज़ारों बेगुनाहों की जान गई. दुनिया के सबसे ताक़तवर देश को अहसास हुआ कि वह ख़ुद निशाने पर है. लिहाजा, आतंक के ख़िलाफ़ युद्ध की घोषणा कर दी गई. पहले इराक़, फिर अफ़ग़ानिस्तान और अब पाकिस्तान में आतंक के वजूद को मिटाने की कवायद शुरू हो गई. इसी युद्ध का रास्ता श्रीलंका सरकार को भी समझ में आया. राज्य के अस्तित्व को बचाने के लिए ऐसे संगठनों के ख़िलाफ़ कड़े से कड़े क़दम उठाने की ज़रूरत उसे महसूस हुई. इससे सीख लेते हुए श्रीलंका सरकार की तरफ़ से उसकी सेना को भी हरी झंडी दे दी गई कि किसी भी क़ीमत पर लिट्टे का नामोनिशान मिटाया जाए और वापस श्रीलंका सरकार के अस्तित्व को क़ायम किया जाए. दो साल लंबे चले इस ऑपरेशन को श्रीलंका ने जिस तरह से अंजाम दिया उस पर दुनिया भर से उंगलियां उठीं. हालांकि युद्ध नहीं रुका. मीडिया को युद्ध क्षेत्र से दूर रखा गया. श्रीलंका सेना ने एक-एक करके लिट्टे के सभी बड़े छोटे नेताओं और कैडरों का सफ़ाया कर दिया.

अंतिम युद्ध को भांपते हुए लिट्टे ने इलाक़े की निर्दोष तमिल जनसंख्या को ढाल बना लिया. श्रीलंका सेना के सामने यह सवाल ज़्यादा समय तक नहीं टिक पाया कि वह आतंक के ख़िलाफ़ इस युद्ध में क्या क़ीमत अदा करने जा रही है. अंतरराष्ट्रीय समुदाय अंजान बना रहा और श्रीलंका सरकार ने जनरल फोनेस्का को युद्ध जीतने की हरी झंडी दे दी. अंत में लिट्टे प्रमुख को उसके कुछ ख़ास लोगों के साथ एक कोने में घेर लिया गया. मृत प्रभाकरण की तस्वीरें जारी की गईं और लिट्टे पर फतह का एलान कर दिया गया. लगभग बीस साल बाद श्रीलंकाई सेना ने अपने ही देश के इस भाग पर वापस श्रीलंका का वचर्स्व क़ायम किया. आज पाकिस्तान के स्वात इलाक़े में तालिबान के ख़िलाफ़ पाकिस्तानी सेना ने मोर्चा खोल रखा है. तालिबान के ख़िलाफ़ यह युद्ध पहले अफ़ग़ानिस्तान में शुरू किया गया. वहां, यह युद्ध आतंक के ख़िलाफ़ युद्ध के नाम से ही करार दिया गया. आज इस युद्ध को राह-ए-रस्त के नाम से जाना जा रहा है. पाकिस्तानी सेना ने पंद्रह हज़ार से ज़्यादा फौजी चार हज़ार तालिबानी लड़ाकों को मार गिराने के लिए लगा रखी है. पाकिस्तानी सेना का दावा है कि वह अब तक एक हज़ार से ज़्यादा तालिबानियों को मार चुकी है, जिसमें तालिबान के कई बड़े लड़ाके शामिल हैं. हालांकि पाकिस्तानी तालिबान का मौलाना फ़ज़लुल्लाह अभी तक पाकिस्तानी सेना के हाथों नहीं चढ़ा है, लेकिन उसके कई नज़दीकी लड़ाके जिसमें उसका भाई और कई नज़दीकी रिश्तेदार भी शामिल हैं, मारे जा चुके हैं. वहीं पाकिस्तान सेना के खुफिया तंत्र को यह जानकारी है कि कभी पाकिस्तानी तालिबान के शीर्ष पर बैठा बैतुल्लाह मेहसूद बीमारियों से ग्रस्त है और फ़िलहाल वजीरिस्तान इलाक़े में रहकर अपना इलाज करा रहा है. पाकिस्तानी सेना के अभी तक के रुख़ से साफ है कि वह भी श्रीलंकाई सेना के ऑपरेशन से सबक़ लेते हुए पहले तालिबान को कमज़ोर कर एक इलाक़े में घेरने की तैयारी कर रही है. लिहाजा सबसे पहले उन आतंकियों को ख़त्म करने की कोशिश की जा रही है जो फ़ज़लुल्लाह के नज़दीकी हैं और पाकिस्तानी तालिबान के कोर ग्रुप में गिने जाते हैं. इस तरह पहले तालिबान को कमज़ोर कर उसके शीर्ष नेता का तालिबान के छोटे लड़ाकों के साथ संपर्क काट दिया जाए. जिसके बाद बचे हुए शीर्ष नेताओं और तालिबानी इंटेलिजेंस का एक झटके में सफ़ाया किया जा सके. स्वात इलाक़े में जारी संघर्ष में तालिबानी ख़ुद को घिरा हुआ पा रहे हैं. जहां अफ़ग़ानिस्तान से सटी सीमा पर लगातार अमेरिकी मिसाइलें बरस रही हैं और उसे अफ़ग़ानिस्तान सीमा से दूर रखे है, वहीं पाकिस्तानी सेना पर बढ़ते दबाव के चलते उसे किसी तरह की मदद पाकिस्तान में नहीं मिल पा रही है. लिहाजा, उसके पास भी लड़ने के सिवाय कोई चारा नहीं बचा है.

इन हालात में बेगुनाहों को ढाल बनाने का ही विकल्प तालिबान के पास बचा है और वह उसका फ़ायदा भी उठा रहा है. स्वात और नॉर्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस में, जहां भी सेना के साथ सीधे संघर्ष में तालिबान लड़ाके कमज़ोर पड़ रहे हैं, वह रिहायशी इलाक़ों में घुस रहे हैं. इसी को अपना कवच बना रहे हैं. तालिबानी, इन इलाक़ों के कम उम्र के लड़कों और युवाओं को पाकिस्तान सेना के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए मजबूर कर रहे हैं. उन्हें जिहाद में शरीक होने के लिए मजबूर कर रहे हैं. अब वक़्त आ चुका है कि तालिबान और अलक़ायदा जैसे संगठन अपनी पुनर्समीक्षा करें. उन्हें आतंक को जरिया बना कर अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के इन रास्तों को छोड़ने की ज़रूरत है. वैश्विक भौगोलिकीकरण के इस दौर में जहां बाज़ार का विस्तार हो रहा है, यह बात किसी राज्य के हित में नहीं है कि वह भौगोलिक लिहाज़ से कोई समझौता करे. लिहाजा, श्रीलंका उन देशों के लिए एक मिसाल बन सकता है जो आतंकवाद की समस्या को पिछले कई दशकों से झेल रहे हैं.

आतंकवाद और अलगाववाद जैसे मसलों को टाल कर उन्हें नासूर बनाने का अंजाम श्रीलंका देख चुका है और कई अन्य देश इसे अभी भी झेल रहे हैं. आज राष्ट्र-राज्य अपनी शक्तियों को एक बार फिर से स्थापित करने की ठान चुके हैं. श्रीलंका के हाथों लिट्टे के सफ़ाए से एक बात साफ है कि आतंकवाद की समस्या से जूझ रहे देश इस बात पर आंतरिक सहमति बना चुके हैं कि उन्हें आतंक के ख़िलाफ़ जारी जंग को हर हाल में जीतना है.

rahul.chauthiduniya@gmail.com

आज पाकिस्तान के स्वात इलाक़े में तालिबान के ख़िलाफ़ पाकिस्तानी सेना ने मोर्चा खोल रखा है. तालिबान के ख़िलाफ़ यह युद्ध पहले अफ़ग़ानिस्तान में शुरू किया गया. वहां, यह युद्ध आतंक के ख़िलाफ़ युद्ध के नाम से ही करार दिया गया. आज इस युद्ध को राह-ए-रस्त के नाम से जाना जा रहा है. पाकिस्तानी सेना ने पंद्रह हज़ार से ज़्यादा फौजी चार हज़ार तालिबानी लड़ाकों को मार गिराने के लिए लगा रखी है. पाकिस्तानी सेना का दावा है कि वह अब तक एक हज़ार से ज़्यादा तालिबानियों को मार चुकी है जिसमें तालिबान के कई बड़े लड़ाके शामिल हैं.

सभी फोटो-*पीटीआई*

वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हुए आत्मघाती हमले में हज़ारों बेगुनाहों की जान गई. दुनिया के सबसे ताक़तवर देश को अहसास हुआ कि वह ख़ुद निशाने पर है. लिहाजा, आतंक के ख़िलाफ़ युद्ध की घोषणा कर दी गई. पहले इराक़, फिर अफ़ग़ानिस्तान और अब पाकिस्तान में आतंक के वजूद को मिटाने की कवायद शुरू हो गई. इसी युद्ध का रास्ता श्रीलंका सरकार को भी समझ में आया. राज्य के अस्तित्व को बचाने के लिए ऐसे संगठनों के ख़िलाफ़ कड़े से कड़े क़दम उठाने की ज़रूरत उसे महसूस हुई.

यही है राइट च्वाइस... प्रोफेशनल कोर्स

रवि बारहवीं की परीक्षा दे चुका है. आगे की पढ़ाई को लेकर सबकी अपनी-अपनी राय है. कोई उसे बी-टेक करने की सलाह दे रहा है तो कोई मर्चेंट नेवी में जाने के फ़ायदे गिना रहा है. किसी का कहना है कि बीएससी करने के बाद ही किसी प्रोफेशनल कोर्स को ज्वाइन करना चाहिए. कुल मिलाकर जितने लोग उतनी सलाह और जितनी ज़्यादा सलाह उतना ही ज़्यादा कंफ्यूज़न. यह स्थिति सिर्फ़ रवि की नहीं है, बल्कि उन सभी बच्चों की है जो बारहवीं के बाद किसी कोर्स का चयन करना चाहते हैं. बदलते परिवेश ने जहां एक ओर रोज़गार के अनेक अवसर उपलब्ध कराए हैं वहीं दूसरी ओर प्रतिस्पर्धा के स्तर को भी काफी ऊपर उठाया है. पहले युवा ग्रेजुएशन करने के बाद ही कोई प्रोफेशनल कोर्स करते थे, लेकिन आजकल ऐसा नहीं रहा.

प्रोफेशनल बनाम ट्रेडिशनल कोर्स

सामान्य कोर्स करने के बाद कोई भी प्रोफेशनल कोर्स करने में समय अधिक लगता है. इसलिए बारहवीं के बाद ही प्रोफेशनल कोर्स करने पर समय की बचत हो सकती है. वर्तमान समय में प्रोफेशनल कोर्स की डिमांड है. सामान्य स्नातक को नौकरी में काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है. वर्ल्ड बैंक की एक रिपोर्ट का भी यही मानना है कि भारत में 90 प्रतिशत ग्रेजुएट नौकरी के लायक नहीं हैं. उदारीकरण के बाद भारतीय कंपनियां विदेशी कंपनियों से प्रतिस्पर्धा करने के लिए कुशल कामगारों की मांग बढ़ी. रोज़गार बढ़ा, लेकिन कुशल लोगों की कमी बनी रही. यही वजह है कि हॉस्पिटैलिटी, टूरिज़्म, रिटेल, प्रबंधन, बीमा, टेलीकॉम जैसे क्षेत्रों में जितने कुशल लोगों की डिमांड है, उतने लोग मिल नहीं रहे हैं. इन सभी क्षेत्रों की वर्तमान ज़रूरतों के हिसाब से सामान्य शिक्षा ग्रहण करना पर्याप्त नहीं है. इसके लिए आवश्यकता है प्रोफेशनल कोर्स की. भविष्य में प्रोफेशनल्स की कमी की आशंका को देखकर ही सरकार ने शिक्षित युवाओं को कुशल पेशेवर बनाने का निर्णय लिया है जिसके तहत स्किल डेवलपमेंट सेंटर खोले जाएंगे.

कमी नहीं विकल्प की

वर्तमान में परंपरागत विषयों के साथ-साथ सैकड़ों नए विकल्प सामने उपलब्ध हैं. इन विकल्पों में से कई ऐसे विकल्प हैं जो विगत कुछ वर्षों से अपनी उपस्थिति बहुत ही प्रभावशाली ढंग से दर्ज़ किया है. आइए, ऐसे ही कुछ क्षेत्रों के बारे में जानते हैं.

एनिमेशन : विगत वर्ष *हनुमान, कुंग फूं पाण्डा* और *रोडसाइड रोमियो* जैसे एनिमेशन फिल्मों के साथ भारतीय कंपनियों और स्टूडियो ने इस ओर क़दम बढ़ाया है. भारत में कम क़ीमत पर फिल्म तैयार हो जाने के कारण भी कई विदेशी प्रोडक्शन कंपनियों ने यहां फिल्म बनाने के लिए समझौते किए हैं. इसी कड़ी में यशराज फिल्म्स ने *वाल्ट डिज़्नी* के साथ समझौता किया है. फिक्की की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2007 में यह उद्योग लगभग 0.31 बिलियन डॉलर का था जो वर्ष 2012 तक 24 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज़ कर 0.94 बिलियन डॉलर का हो जाएगा.

मीडिया-एंटरटेनमेंट : मंदी के कारण मीडिया एवं एंटरटेनमेंट उद्योग पर असर पड़ा, लेकिन छात्रों का इस क्षेत्र के कोर्स के प्रति रुझान कम नहीं हुआ है. फिक्की की एक रिपोर्ट के अनुसार यह उद्योग वर्ष 2011 तक एक लाख करोड़ रुपए तक का हो जाएगा. इस क्षेत्र में फिल्म प्रोडक्शन से लेकर टीवी चैनलों में काफी अवसर उपलब्ध हैं.

टेलीकॉम : सरकार कई नई टेलीकॉम कंपनियों को लाइसेंस प्रदान कर रही है और भारत में एक नई पीढ़ी (थ्री जी) की मोबाइल सेवा लांच की गई है. इसके साथ ही इस क्षेत्र में नई तकनीक का विस्तार होगा जिसके लिए लगभग डेढ़ लाख प्रोफेशनलों की ज़रूरत होगी. एक अनुमान के मुताबिक 2010 तक भारत में 50 करोड़ मोबाइल उपभोक्ता हो जाएंगे. इस क्षेत्र में टेलीकॉम सॉफ्टवेयर इंजीनियर, टेलीकॉम सिस्टम सॉल्यूशन इंजीनियर, कस्टमर सर्विस एक्ज़िक्यूटिव और टावर कनेक्शन जैसे क्षेत्रों में बेहतर संभावनाएं हैं.

लॉ: विगत कुछ वर्षों से परंपरागत करियर के अलावा इस क्षेत्र में एक नया करियर उभर कर सामने आया है. लॉ प्रोसेसिंग आउटसोर्सिंग (एलपीओ). एलपीओ काफी तेज़ी से विकास कर रहा है. नैस्कॉम मार्केट इंटेलिजेंस रिपोर्ट के अनुसार भारत में एलपीओ कारोबार 2010 तक छह अरब डॉलर को पार कर जाएगा. इसके अलावा बहुराष्ट्रीय कंपनियों में लीगल एडवाइज़र और कंसल्टेंट जैसे पद के लिए काफी डिमांड बढ़ रहा है.

बीमा: बीमा क्षेत्र हमेशा से आसानी से उपलब्ध हो जाने वाला करियर रहा है. इस क्षेत्र को निजी कंपनियों के लिए खोल दिए जाने के बाद इसमें काफी रोज़गार सृजन हुए. इतने के बावजूद भारत के मात्र 22 प्रतिशत लोग ही बीमा करा पाए हैं, जबकि अमेरिका और यूरोपीय देशों में लगभग शत-प्रतिशत लोग अपना बीमा कराए होते हैं. देश की सबसे बड़ी बीमा कंपनी भारतीय जीवन बीमा निगम (एल आई सी) ने निजी कंपनियों से मिल रही चुनौतियों का सामना करने के लिए वर्ष 2011 तक 11 लाख एजेंट भर्ती करने की योजना बनाई है. इसके अलावा रिलायंस लाइफ में 90 हज़ार, टाटा एआईजी में 27 हज़ार और मेटलाइफ इंडिया में 32 हज़ार लोगों को भर्ती करने की योजना है.

बैंकिंग: मंदी के बावजूद भारतीय बैंक इन दिनों काफी विकास कर रहे हैं. साथ ही अपने विस्तार के लिए नई भर्तियां भी कर रहे हैं. हाल ही में देश का सबसे बड़े बैंक भारतीय स्टेट बैंक ने 25 हज़ार लोगों की भर्ती करने की घोषणा की है. इसके अलावा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में अमूमन हर हफ्ते नई भर्तियों की घोषणा होती रहती हैं. निजी क्षेत्र के भी कई बैंकों में नई भर्तियां हो रही हैं. आने वाले दो वर्षों में आईसीआईसीआई बैंक एक लाख लोगों को रोज़गार प्रदान करेगा.

मैनेजमेंट: मंदी के बावजूद कैंपस प्लेसमेंट कम नहीं हुआ है. मैनेजमेंट की पढ़ाई के लिए छात्रों का रुझान भी कम नहीं हुआ है. इसका अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कैट परीक्षा में शामिल होने वाले अभ्यर्थियों में निरंतर बढ़ोतरी हुई है. बी-स्कूलों में दाख़िले के लिए देश में कई एंट्रेंस टेस्ट आयोजित किए जाते हैं. इनमें से किसी परीक्षा में शामिल होकर बेहतर अंक प्रतिशत के साथ पसंदीदा बी-स्कूल में दाख़िला लिया जा सकता है.

हेल्थ सेक्टर: *प्राइसवाटरहाउसकूपर्स* के अनुसार हेल्थ सेक्टर 2012 तक 40 बिलियन डॉलर का हो जाएगा. इस क्षेत्र में आगामी कुछ वर्षों में लगभग 60 अरब डॉलर के निवेश की संभावना है. जापान की कंपनी *डाइची सैंक्यो* ने भारत की सबसे बड़ी फार्मा कंपनी रैनबैक्सी का अधिग्रहण किया है. इसके अलावा कई विदेशी कंपनियां अपनी इकाइयां भारत में खोल रही हैं. साथ ही भारत में मैनपावर की कम क़ीमत होने की वजह से अपने शोध कार्य भी भारत में करा रही हैं. इसके लिए प्रोफेशनलों की मांग होगी.

टूरिज़्म: पिछले साल नवंबर में मुंबई में हुए आतंकी हमले के बाद भारत में विदेशी सैलानियों के आने में कमी दर्ज़ की गई थी, लेकिन विगत कुछ माह में सुधरे हालात के बाद सैलानियों के आने की संख्या में बढ़ोतरी हुई है. वर्ल्ड ट्रेवल एंड टूरिज़्म के मुताबिक भारत ने वर्ष 2008 में टूरिज़्म से लगभग 100 बिलियन डॉलर की कमाई अर्जित की है जो वर्ष 2018 तक 9.4 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़कर 275.5 बिलियन डॉलर का हो जाएगा. हाल के वर्षों में भारत ने मेडिकल टूरिज़्म से भी काफी धन अर्जित किया है.

विकल्प को अवश्य परखें

किसी नए कोर्स में दाख़िला लेने से पहले उसके सभी विकल्पों की जांच-परख कर लेनी चाहिए. सर्वप्रथम उसमें कोर्स करने के बाद रोज़गार के अवसर के बारे में जानकारी अवश्य ले लेनी चाहिए. उसके बाद जिस भी संस्थान में दाख़िला ले रहे हों, उसकी मान्यता के बारे में पता अवश्य कर लें. यानी मान्यता कहां से प्राप्त है और कोर्स यूजीसी से मान्यता प्राप्त है कि नहीं. इन सभी बातों को ध्यान में रखा जाए तो भविष्य में किसी प्रकार की परेशानी कतई नहीं होगी.

क्या करें, क्या न करें

- कोर्स चुनने से पहले अपनी रुचि, क्षमता व करियर के विकल्प पर विचार अवश्य करें.
- दूसरों की देखा-देखी में कोर्स का चयन न करें.
- पारंपरिक कोर्स के बजाय नए विकल्पों पर भी विचार करें.
- अनिर्णय की स्थिति में काउंसलर की सलाह लें.
- लक्ष्यहीन या दिशाहीन पढ़ाई न करें.
- जिस संस्थान से कोर्स करना चाहते हैं, उसकी मान्यता के बारे में पता ज़रूर कर लें.
- कोर्स चुनते समय करियर से संबंधित विकल्प और संभावनाओं का भी ध्यान रखना चाहिए.

- वर्ल्ड बैंक के सर्वे के अनुसार भारत में हर वर्ष लगभग एक करोड़ से ज़्यादा युवा ग्रेजुएट की डिग्री प्राप्त करते हैं.
- रिपोर्ट के अनुसार इनमें से 90 प्रतिशत नौकरी के लायक नहीं रहते.
- भारत में लगभग 300 से ज़्यादा विश्वविद्यालय और लगभग 12,000 कॉलेज हैं.
- विश्वविद्यालयों की शिक्षा पद्धति में 1970 से कोई परिवर्तन नहीं हुआ है.
- टीमलीज की रिपोर्ट के अनुसार देश में लगभग 45 करोड़ रोज़गार के अवसर उपलब्ध हैं.
- उपलब्ध कुल अवसरों में से 90 प्रतिशत कौशल पर आधारित हैं, जबकि मात्र 9 प्रतिशत रोज़गार ऐसे हैं जिनमें उच्च शिक्षा चाहिए.

विज्ञापनों की है बहार

विज्ञापन हमारे जीवन का अहम हिस्सा बन चुके हैं. अख़बारों, टीवी चैनलों, इंटरनेट और होर्डिंग के माध्यम से आप प्रत्येक दिन नए-पुराने विज्ञापनों से रू-ब-रू होते हैं. इसमें कई ऐसे विज्ञापन होते हैं जो आपका ध्यान बरबस ही आकर्षित कर लेते हैं. विज्ञापन का आकर्षण तब और भी बढ़ जाता है जब आपका पसंदीदा कलाकार उसमें नज़र आ रहा हो. यह क्षेत्र जितना ग्लैमरस है उतना ही कमाई वाला भी. अच्छा सैलरी पैकेज़ होने की वजह से इसमें प्रतियोगिता भी बहुत ज़्यादा है. यदि आपमें कल्पनाशीलता व रचनात्मकता और चुनौतीपूर्ण कार्य करने की क्षमता है तो आप भी इस क्षेत्र का हिस्सा बन सकते हैं.

आंकड़े बताते हैं

वैश्विक बाज़ार में मंदी के बावजूद भारतीय विज्ञापन उद्योग बहुत तेज़ी से विकास कर रहा है. एडवर्टाइज़िंग आउटलुक रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2007 की तुलना में वर्ष 2008 में 17 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज़ कर यह उद्योग 20,717 करोड़ रुपए का हो गया है. कुल विज्ञापन में 47 प्रतिशत की हिस्सेदारी के साथ प्रिंट माध्यम पहले स्थान पर है. रिपोर्ट के मुताबिक, प्रिंट और टीवी संयुक्त रूप से 88 प्रतिशत की हिस्सेदारी रखते हैं. सबसे प्रभावशाली वृद्धि रखने वाला माध्यम इंटरनेट रहा, जिसने 45 प्रतिशत वृद्धि दर्ज़ कर अपना आकार 363 करोड़ रुपए का कर लिया है. इसके अलावा रेडियो पर दिए गए विज्ञापनों से होने वाली कमाई में भी 38 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो 62 करोड़ रुपए तक पहुंच गया है. आर्थिक मंदी की मार से विज्ञापन जगत की रफ़्तार जो थोड़ी धीमी पड़ी है लेकिन विज्ञापन एजेंसियों के पास विकल्पों की कमी नहीं है. इस बार तो चुनाव में भी जमकर प्रोफेशनल विज्ञापन एजेंसियों का प्रयोग हुआ है. सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज के अध्यक्ष भास्कर राव के मुताबिक बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा विज्ञापनों में कटौती से हुई नुकसान की भरपाई में राजनीतिक दलों के विज्ञापन काफी लाभकारी हुए. इस चुनाव में राजनीतिक दलों व प्रत्याशी द्वारा प्रचार के लिए दिए जाने वाले विज्ञापन पर अनुमानित राशि 8,000 करोड़ रुपए है, जबकि निर्वाचन आयोग और अन्य सरकारी एजेंसियों द्वारा दी जाने वाली अनुमानित राशि 2,000 करोड़ रुपए है. इसके अलावा अन्य सरकारी विज्ञापन और आयोजन हैं जो विज्ञापन की दुनिया की रफ़्तार धीमी नहीं पड़ने देंगे.

योग्यता व करियर विकल्प

एक विज्ञापन कई विभागों से गुज़रने के बाद तैयार होता है और हर एक विभाग की अलग-अलग योग्यताएं होती हैं. ये विभाग हैं-

क्लाइंट सर्विसिंग: विज्ञापन से जुड़ी हर संस्था का एक मार्केटिंग विभाग होता है. यह विभाग अपनी संस्था के लिए बिज़नेस लाने का काम करता है. साथ ही क्लाइंट और अपनी संस्था के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी का काम करता है. अकाउंट्स मैनेजर इन सभी कामों को अंज़ाम देता है. अकाउंट्स मैनेजर के लिए बाज़ार, उपभोक्ता, क्लाइंट के बिज़नेस के बारे में अच्छी जानकारी आवश्यक है. किसी भी संकाय से स्नातक इसमें फ्रेशर के रूप में कार्य आरंभ कर सकते हैं. यदि एमबीए अथवा इकोनॉमिक्स या फाइनेंस से स्नातक हैं तो प्राथमिकता मिल सकती है.

क्रिएटिव डिपार्टमेंट: यह विभाग प्रिंट, ऑडियो व वीडियो के रूप में विज्ञापन के विचार और डिज़ाइन के लिए ज़िम्मेदार होता है. इस विभाग के दो सेक्शन होते हैं-क्रिएटिव राइटिंग और ग्राफिक्स. क्रिएटिव राइटर विज्ञापन से जुड़े सभी लेखन कार्यों को अंज़ाम देता है जिसमें स्लोगन, जिंगल, स्क्रिप्ट आदि शामिल होते हैं. ग्राफिक्स सेक्सन में विजुअलाइज़र व ग्राफिक डिज़ाइनर होते हैं जो विज्ञापन के लेआउट, ग्राफिक्स, सिंबल, लोगो आदि को देखते हैं. दूसरे शब्दों में क्रिएटिव राइटर की कल्पना को आकर्षक डिज़ाइन मूर्त रूप प्रदान करता है. क्रिएटिव राइटर के लिए न्यूनतम स्नातक होना आवश्यक है और लेखन कौशल भी अच्छा होना चाहिए. इसके अलावा जिस भाषा के विज्ञापन से जुड़ने जा रहे हैं, उस भाषा के सटीक शब्दों के चयन करने की क्षमता होनी चाहिए. विजुअलाइज़र व ग्राफिक्स डिज़ाइनर के लिए कमर्शियल आर्ट्स से डिप्लोमा या डिग्री होनी चाहिए. साथ ही कुछ प्रचलित कंप्यूटर प्रोग्राम्स (जैसे फोटोशॉप, कोरल ड्रा आदि) की जानकारी होनी चाहिए.

मार्केट रिसर्च: मार्केट रिसर्चर का काम है उपभोक्ता, मार्केट और प्रतिस्पर्द्धा को समझना. इसमें परोक्ष रिसर्च, समूह परीक्षण, साक्षात्कार, प्रोडक्ट प्रयोग और सेल्स ट्रेंड का अध्ययन शामिल होता है. शोध से जुड़े आंकड़ों को इकट्ठा किया जाता है और अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उसका विश्लेषण किया जाता है. मार्केट रिसर्चर के लिए एमबीए या स्टैस्टिक्स से स्नातक होना अनिवार्य होता है.

मीडिया प्लानिंग: यह विभाग प्रेस, रेडियो, टीवी या होर्डिंग में विज्ञापन की स्थिति और समय को निर्धारित करता है. विज्ञापन की स्थिति और समय का निर्धारण टारगेट ग्रुप या सेगमेंट के हिसाब से किया गया है. इसमें करियर अपनाने वाले के लिए विज्ञापन में स्नातक या वोकेशनल विषय के रूप में मास मीडिया होना आवश्यक होता है. इसके लिए विज्ञापन में कई संस्थान स्नातकोत्तर कोर्स भी चलाते हैं.

संभावनाएं :

आकर्षक पैकेज के दम पर विज्ञापन में अपना करियर अपनाने वालों का पसंदीदा क्षेत्र बना हुआ है. इस क्षेत्र में प्रवेश की आवश्यक योग्यताओं को पूरा कर यहां से अपने करियर की शुरुआत कर सकते हैं.

- विज्ञापन एजेंसियां
- निजी या सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के विज्ञापन विभाग
- अख़बार, टीवी चैनल, पत्रिका, रेडियो और इंटरनेट के विज्ञापन प्रभाग
- ग्राफिक्स एवं मल्टीमीडिया संगठनों
- फ्रीलांसर के रूप में आरंभ में मासिक वेतन 8,000-15,000 रुपए का होता है, लेकिन जैसे-जैसे अनुभव बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे वेतन में भी बढ़ोतरी होती जाती है. चार से पांच वर्ष के अनुभव के बाद ही मासिक वेतन 40,000-70,000 रुपए के बीच हो जाता है. चूंकि यह क्षेत्र रचनात्मकता से जुड़ा है, इसलिए अपनी क्रियाशीलता व कल्पनाशीलता के बल पर नई ऊंचाइयों पर पहुंचा जा सकता है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

प्रशिक्षण संस्थान

- मुद्रा इंस्टीट्यूट ऑफ कम्यूनिकेशंस, अहमदाबाद
- इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मास कम्यूनिकेशन (आईआईएमसी), नई दिल्ली
- राजेंद्र प्रसाद इंस्टीट्यूट ऑफ कम्यूनिकेशन एंड मैनेजमेंट, मुंबई
- भवन कॉलेज ऑफ कम्यूनिकेशन एंड मैनेजमेंट, मुंबई
- भारतीय विद्या भवन, नई दिल्ली
- नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एडवरटाइज़िंग(एनआईए), नई दिल्ली
- नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिज़ाइन, अहमदाबाद

धर्म, सेक्स और महिलाएं

अनंत विजय

सुधीर कक्कड़ का नाम हिंदी पाठकों के लिए नया नहीं है. सुधीर कक्कड़ की कई पुस्तकें हिंदी में अनूदित होकर ख़ासी चर्चित हो चुकी हैं. उनकी अंग्रेज़ी में लिखी पुस्तक- द एसेटिक ऑफ डिज़ायर- का हिंदी अनुवाद *कामयोगी* जब छपा तो एक ही वर्ष में उसके दो संस्करण प्रकाशित हो गए थे. हालांकि हिंदी में कामकला पर बहुत ही कम किताबें हैं और जब भी कामसूत्र और उसको आधार बनाकर कोई किताब आती है तो पाठक उसे हाथों-हाथ लेते हैं. इसलिए कि कामसूत्र में अब भी कई गुत्थियां हैं, जिनकी व्याख्या होनी शेष हैं. कक्कड़ ने वात्स्यायन की इसी किताब के आधार पर *कामयोगी* लिखा था. इसके अलावा सुधीर की किताब *मीरा और महात्मा* की भी हिंदी में काफी चर्चा हुई, विवाद भी कम नहीं हुए. कुछ दिनों पहले पेंग्विन बुक्स, नई दिल्ली से सुधीर और कैथरीना कक्कड़ की नई किताब-द इंडियंस, पोट्रेट ऑफ पीपल-छपकर आई है. अपनी इस किताब में सुधीर और कैथरीना ने व्यापक शोध और बातचीत के आधार पर भारतीयता को एक नए सिरे से व्याख्यायित और उद्घाटित करने की कोशिश की है. अपने हिसाब से भारतीयता को रेखांकित करने के क्रम में लेखक ने प्राचीन भारत से लेकर आधुनिक भारत को जिस तरह से एक सूत्र में पिरोने की कोशिश की है, वह क़ाबिले ग़ौर है. भारत में इतनी विभिन्नताओं के बावजूद जो एक चीज़ इसे सुदूर दक्षिण से लेकर कश्मीर तक और पश्चिम में गुजरात से लेकर उत्तरपूर्व तक जोड़ती है, उसको लेखक ने शिद्दत के साथ रेखांकित करने की कोशिश की है. अपनी इस शोधपरक किताब में लेखक ने प्राचीन भारतीय ग्रंथों के साथ समकालीन लेखन को भी अपने तर्कों के समर्थन में इस्तेमाल किया है. इस वजह से शोध की विश्वसनीयता बढ़ जाती है. न केवल लेखन, बल्कि भारतीय फिल्मों को भी सुधीर ने अपने इस शोध का हिस्सा बनाया है. इस किताब में भारतीय स्त्रियों के बीच होने वाले लेस्बियन संबंधों पर लिखते हुए सुधीर शबाना आज़मी की फिल्म *फायर* का उदाहरण देते हैं. इस किताब में कक्कड़ ने आठ हिस्से में अपने विचारों को रखा है. जिसमें पितृसत्तात्मक समाज, जाति-व्यवस्था, भारतीय महिलाओं की दशा, सेक्सुअलिटी और स्वास्थ्य, धार्मिक जीवन, हिंदू- मुस्लिम संघर्ष और भारतीय मानस को अपने हिसाब से परखने की कोशिश की है . इस किताब के चार अध्याय बेहद गंभीर और महत्वपूर्ण हैं-भारतीय स्त्री : पारंपरिक और आधुनिक, सेक्सुअलिटी, धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन और हिंदू और मुस्लिम समाज के बीच के द्वंद्व .

भारतीय स्त्री की स्थिति पर सुधीर ने गुप्त काल से लेकर अब तक का अध्ययन किया है. किस तरह परिवार में लड़की पैदा होने के बाद से ही उसके प्रति उपेक्षा का भाव पैदा हो जाता है, इसको समझाने के लिए सुधीर कक्कड़ ने मृणाल पांडे के लेखन को कई जगह उद्धृत किया है. लड़के और लड़कियों के बीच होने वाले सामाजिक भेदभाव के अलावा सुधीर ने लड़कियों को किशोरावस्था में होने वाली समस्याओं पर भी सूक्ष्मता से प्रकाश डाला है. कक्कड़ के इस शोध का रेंज बहुत बड़ा है. जहां एक ओर वह विश्व बैंक के अध्ययन और विदेशी विद्वानों के शोध को आधार बनाते हैं, वहीं दूसरी ओर भारतीय समाज की फूहड़ से फूहड़ कहावतों का भी अपने विचारों के समर्थन में इस्तेमाल कर लेते हैं. लड़कियों की हालत पर लिखते हुए लेखक एक जगह लिखता है-हंसी तो फंसी. इससे कम से कम एक बात तो साबित हो ही जाती है कि कक्कड़ ने अपनी इस वैचारिक किताब में शोध को व्यापक आधार प्रदान कर प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की है. पारंपरिक भारतीय नारी और आधुनिक भारतीय नारी की विवाह की स्थितियों पर तुलनात्मक रूप से अध्ययन करते हुए कक्कड़ ने विस्तार से विचार किया है. लेखक ने तर्कों के आधार पर यह साबित करने का प्रयास किया है कि अब भी भारतीय समाज में लड़कियों को अपनी मर्ज़ी का वर चुनने का अधिकार नहीं है. उसे तो अब भी उसका पिता या परिवार वाले जिस खूंटे से बांध देते हैं, वह ताउम्र उसी से बंधे रहने को अभिशप्त रहती है.

हालांकि लेखक ने हाल के दिनों में भारतीय नारी के स्वभाव में आए बदलाव को भी रेखांकित किया है, लेकिन इस बदलते स्वभाव की लड़कियों की संख्या इतनी कम है कि उसे किसी बड़े बदलाव की तरह रेखांकित नहीं किया जा सकता है. वे तो बस एक संकेत भर हो सकती हैं. लेखक ने अपने शोध के आधार पर यह साबित करने की कोशिश की है कि भारत में अब भी प्रेम विवाह करने वाली ज़्यादातर लड़कियों को विवाह के बाद अफसोस होता है. अपने इस तर्क के समर्थन में लेखक ने तमिलनाडु के पंद्रह गांवों में अलग-अलग जातियों और समुदायों की लड़कियों के बीच हुए एक सर्वेक्षण का हवाला दिया है. इस सर्वे में सत्तर लड़कियों का चुनाव किया गया, जिनमें से सिर्फ़ पांच ने अपनी मर्ज़ी से विवाह किया था. इन पांचों लड़कियों को अपने परिवार वालों का सहयोग नहीं मिला और उन्हें घर से भाग कर मंदिर में शादी रचानी पड़ी, लेकिन इससे भी ज़्यादा यह जानना ज़रूरी है कि इन पांच में से चार लड़कियों को अपने इस क़दम (प्रेम विवाह) के लिए खेद है. वजह उनके पति और उनके परिवार वालों का उनकी ज़िंदगी को नरक बना देना. यह तो उस राज्य की मिसाल है जहां की महिलाएं और राज्यों की महिलाओं की तुलना में ज़्यादा शिक्षित और अपने अधिकारों को लेकर सजग हैं. इस बात का संकेत *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली* (अप्रैल 17-24,1999) में टीके सुंदरी रवींद्रन ने भी किया है. सेक्सुअलिटी इस पुस्तक का चौथा, लेकिन बेहद अहम अध्याय है. वात्स्यायन का कामसूत्र, सुधीर कक्कड़ का प्रिय विषय है. उस ग्रंथ पर उन्होंने गहन शोध किया है. इसकी गुत्थियों को सुलझाने और व्याख्यायित करने के क्रम में कक्कड़ ने दुनिया के कई पुस्तकालयों में कामसूत्र पर उपलब्ध सामग्री का अध्ययन किया है. उनका यह अध्ययन यहां भी दिखता है. प्राचीन भारत में सेक्स के बारे में लिखते हुए लेखक वात्स्यायन के कामसूत्र को अपने लेखन का मुख्य आधार बनाते हैं, साथ ही श्वेतकेतु (माना जाता है कि सेक्स पर पहली पुस्तक उन्होंने ही लिखी) और कालिदास की रचनाओं का भी उद्धरण देते हैं. आज भी भारतीय समाज में सेक्स को टैबू माना जाता है और इसके बारे में खुलकर बात नहीं होती. स्कूलों मे सेक्स शिक्षा की बात पर भगवा ब्रिगेड की भौंहें तन जाती हैं. वहीं वात्स्यायन ने गुप्त काल में ही सेक्स में कामुकता से ज़्यादा प्यार और रोमांस की पैरोकारी करने वाले सिद्धांत का प्रतिपादन किया था. इसलिए तो सुधीर कक्कड़ कामसूत्र को तत्कालीन पितृसत्तात्मक पारंपरिक समाज में महिलाओं के सशक्तीकरण की ज़ोरदार वकालत करनेवाली कृति मानते हैं. वात्स्यायन की कृति का असर था कि उस काल में कामुकता और उपभोग की वस्तु मानी जानेवाली स्त्री से रोमांस और प्यार की बातें होने लगी थी. आज भगवा (बकौल *हंस* संपादक- भग-वा) ब्रिगेड स्कूलों में सेक्स शिक्षा पर हंगामा और तोड़फोड़ पर आमादा हैं, लेकिन उन मंदिरों का वे क्या करेंगे जहां काम कला में लीन स्त्री-पुरुषों की मूर्तियां लगी हैं. धर्म और सेक्स का पुराना रिश्ता रहा है और सुधीर कक्कड़ ने इस रिश्ते को एक नए सिरे से परिभाषित करने की कोशिश की है. सुधीर ने बड़े ही तार्किक ढंग से मंदिरों पर चित्रित कामकला की मूर्तियों और भक्ति काव्य में कामकला के उदाहरण को जोड़कर एक नया आयाम प्रस्तुत किया है. जहां एक ओर वह खजुराहो और कोणार्क के मंदिरों का उदाहरण देते हैं, वहीं दूसरी तरफ जयदेव के *गीत गोविंद* को अपने तर्कों के लिए इस्तेमाल करते चलते हैं. कामसूत्र के देश भारत के बारे में समकालीन अंग्रेज़ी मीडिया अब यह दिखाने या चित्रित करने की कोशिश कर रहा है कि भारत एक *सेक्सुअली राइज़िंग स्टेट* है लेकिन यह अंग्रेजी मीडिया की अज्ञानता है या सीमा, जिसकी वजह से वे ऐसा कह रहे हैं. अंग्रेज़ी मीडिया के सेक्सुअली राइजिंग की बात को भी सुधीर और कैथरीना कक्कड़ ने ग़लत साबित किया है. इतना ही नहीं, भारतीय समाज में सेक्स और ताक़त को लेकर फैली भ्रांतियों-ज़्यादा सेक्स करने से कमज़ोरी होती है, चालीस बूंद ख़ून से एक बूंद वीर्य बनता है, हर स्खलन में आधा औंस वीर्य निकलता है जो साठ पौंड पौष्टिक खाने के बाद बनता है, एक बार सहवास करने से बाईस घंटे की मानसिक और बहत्तर घंटे की शारीरिक श्रम के बराबर की ऊर्जा का क्षय होता है-पर विस्तार से लिखकर भारतीय समाज की तस्वीर को सामने रखा है.

हिंदुस्तानी समाज में शादी और सेक्स के अलावा मां और बेटे के बीच के संबंधों का भी फ्रॉयडी विश्लेषण किया गया है. इस संबंध में वह 1961 में उत्तर भारत के कुछ राज्यों में अग्रवाल समुदाय के बीच हुए एक सर्वे को आधार बनाते हैं. इस सर्वे के नतीजे में यह आया था कि अस्सी प्रतिशत पुरुष मानते हैं कि वे अपनी पत्नी से ज़्यादा अपनी मां के क़रीब हैं. मां और बेटे के रिश्ते को भी सेक्स की कसौटी पर कसा है सुधीर ने. लेखक की इन प्रस्थापनाओं पर आपत्तियां हो सकती हैं, लेकिन वैचारिक बहस को एक आधार तो प्रदान करता ही है. सेक्सुअलिटी पर बात करते हुए लेखक वैकल्पिक सेक्स यानी समलैंगिक और समलिंगकामी स्त्रियों की ज़िंदगी पर भी बात करने से नहीं कतराते. इस क्रम में सुधीर भारत में गे-एक्टिविस्ट अशोक राव कवि की शादी के वक्त का एक दिलचस्प वाक्या बताते हैं, आप भी सुनिए . मैं जब जवान था तो मेरे परिवारवाले ख़ासकर मेरे पिता की बड़ी बहन मुझ पर शादी के लिए जबरदस्त दबाव बना रही थी. इससे तंग आकर एक दिन मैंने कह दिया *आइ वांट टू फ... मैन*, तो मेरी बुआ ने लगभग चीखते हुए मुझे जबाव दिया- आई डोंट केयर वेदर यू वांट टू फ... क्रोकोडायल ऑर एलीफैंट वट टेल मी व्हाई कांट यू मैरी? समलिंग कामी स्त्रियों या लेस्बियन के उदाहरण प्राचीन काल में राजाओं के हरम से ही मिलते हैं. जहां की सैकड़ों स्त्रियां एक साथ पुरुष की ग़ैरमौजूदगी में रहती थीं. एक राजा और सैकड़ों रानियां-लेस्बियन होना शारीरिक मांग हो जाती थी. इस तरह से अगर हम विचार करें तो कक्कड़ ने भारतीय समाज के हर दौर में हर तरह के सेक्स पर शोधपूर्वक लिखा है. इसके अलावा सुधीर कक्कड़ ने इस किताब में हिंदू-मुसलमान के संबंधों और संघर्षों पर विस्तार से लिखते हुए दोनों समुदायों के मानस पटल पर एक-दूसरे की छवि, दोनों समुदायों के बीच टकराव से हिंसा तक का सफ़र, धार्मिक और राजनैतिक नेतृत्व के तर्कहीन वक्तव्यों का असर, अफवाह और दंगों के समाजशास्त्र पर लिखने के अलावा हिंदू-मुसलमान संघर्ष के भविष्य को भी अपने शोध के आधार पर देखने और परखने की कोशिश की है. अगर हम समग्रता में सुधीर और कैथरीना की लगभग दो सौ पेजों की इस किताब को देखें तो यही लगता है कि लेखक द्रय ने गहन शोध और विश्लेषण के आधार पर भारतीयता के हर पहलू को शिद्दत से सामने लाने की कोशिश की है. पश्चिम में भारत और भारतीय समाज को लेकर जो तमाम तरह की भ्रांतियां हैं, उसे यह किताब काफी हद तक दूर करने में सफल होगी.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

अध्यात्म में रास्ते अनेक, मंज़िल एक

सनातन धर्म में पूजा के अपने तरीक़े हैं. मूल रूप से परम तत्व, परमात्मा या उस विराट सत्ता से एकाकार होने की प्रक्रिया को पूजा कह सकते हैं. यह भी बिल्कुल ही आवश्यक नहीं कि हरेक सनातनी एक ही पूजा पद्धति को स्वीकार करे. हर स्त्री या पुरुष को सनातन धर्म में यह अधिकार मिला हुआ है कि वह अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार ही पूजा या साधना का तरीक़ा चुन ले. सनातनी अपनी पूजा घर पर या मंदिर कहीं भी कर सकता है. आम तौर पर अपने घर में सनातनी एक छोटा-सा कोना पूजा के लिए अलग रखता है, जिसमें वह कई सारे देवी-देवताओं को स्थापित रखता है. हां, वह जिस भी मत का होता है, उसके देवी या देवता की मुख्य प्रतिमा या मूर्ति रखता है. मंदिरों में जाना अनिवार्य नहीं है. कई बार तो सनातन धर्म को मानने वाले केवल त्योहारों के समय ही मंदिर में दिखते हैं. मूर्ति पूजा की परंपरा भी बहुत कठोर नहीं है. वह तो बस एक माध्यम होता है कि व्यक्ति उस परम तत्व या सत्ता के क़रीब जा सके. मूर्ति तो बस एक माध्यम है, एक व्यावहारिक तरीक़ा है, परमतत्व और व्यक्ति के बीच संवाद कायम करने का एक व्यावहारिक माध्यम. यही वजह है कि ब्रह्म को दो तरह का भी माना गया है-निर्गुण और सगुण. सगुण ब्रह्म मानवीय गुणों से लैस होता है, इसलिए सामान्य मानव उससे ख़ुद को जोड़ पाता है. वहीं निर्गुण ब्रह्म निराकार और आकारहीन माना गया है. इसी वजह से व्यक्ति ख़ुद को उससे जुड़ा हुआ महसूस नहीं कर पाता. यही वजह है कि मूर्तिपूजा अधिक लोकप्रिय होती है, जबकि निर्गुण ब्रह्म की आराधना दार्शनिक स्तर पर बेहद जटिल हो जाती है. सगुण ब्रह्म को ही ईश्वर के नाम से भी जाना जाता है. ईश्वर को साकार तौर पर परम सत्ता या ब्रह्म का ही रूप माना गया है. कहने का मतलब केवल यही है कि सगुण या निर्गुण, आराधना और उपासना तो व्यक्ति के अपने चुनाव पर ही निर्भर करेगी.

हां, पूजा करने के अपने तरीक़े हो सकते हैं. कोई मंत्र जप कर, कोई शंख फूंक कर, तो कोई केवल ध्यान लगा कर ही परम ब्रह्म से एकाकार होने की कोशिश कर सकता है. परमतत्व की चर्चा या उसके बारे में ज्ञान गुरु से मिलता है और ब्राह्मण को पाकर व्यक्ति को मोक्ष मिले, उसके लिए रास्ता योग से मिलता है. गुरु हमें सही इष्ट, व्यवहार का तरीक़ा और पूजा पद्धति सिखाते हैं. व्यक्तिगत स्तर पर तो किसी भी इंसान का लक्ष्य स्व-साक्षात्कार और अध्ययन-मनन के जरिए गुरु की आवश्यकता से मुक्त हो जाना है. गुरु इसी वजह से सनातन धर्म में आध्यात्मिक व्यवहार के लिए आवश्यक माना गया है. तो सवाल यह उठता है कि अगर हम ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहते हैं, तो उसकी तैयारी कैसे करें? योग इसका सही जवाब देता है. योग के चार प्रकार माने गए हैं. कर्म योग या कर्म मार्ग (यह व्यवहार का रास्ता है), ज्ञान योग या ज्ञान का मार्ग (यह विचार और ज्ञान का रास्ता है), भक्ति मार्ग या भक्ति योग (यह भक्ति का रास्ता है) और अंतिम राजयोग (इसमें ध्यान और साधना के रास्ते ब्रह्म की तलाश की जाती है) कहलाता है. भक्ति का रास्ता मूलभूत तौर पर ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति का रास्ता दिखाता है. भक्ति मार्ग को माननेवाले आम तौर पर अवतारों, जैसे राम और ईश्वर की आराधना करते हैं. इस पथ के मानने वाले अमूमन उपवास और व्रत के जरिए, भजन और पूजन के साथ ईश्वर तक पहुंचने की कोशिश करते हैं. भक्ति मार्ग को मानने वाले अपने ईश्वर के साथ एक प्रेमिल संबंध रखते हैं, न कि अपनी चेतना को ब्रह्म के साथ एकरूप कर देते हैं. कर्मयोग को मानने वाले अपने काम में राग और विराग के बिना मस्त रहकर ब्रह्म को खोजते हैं. कर्म से अलग रहने का मतलब कर्महीन होना नहीं है. बस फल की चिंता से ख़ुद को मुक्त कर लेना है. जैसा कि गीता में कहा भी गया-*कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन, मा कर्मफल हेतुर्भूमा मा संगोस्तवकर्मणि.* यानी कर्म किए जाओ, फल की चिंता में ही दुहरे मत होते रहो. यह योग सबसे कठिन माना जाता है, जब आप फल की चिंता से ही ख़ुद को अलग कर लें.

राज योग के साधक योग क्रियाओं और ध्यान के जरिए ब्रह्म का चिंतन और साक्षात्कार करते हैं. राजयोग आचार्य पतंजलि के योग सूत्रों पर आधारित है. इसमें आठ तरीक़ों का इस्तेमाल कर साधक ब्रह्म का चिंतन करता है. इसमें यम-नियम से शुरुआत कर आसन (सही यौगिक क्रियाएं) और प्राणायाम (सांसों का नियंत्रण) के बाद प्रत्याहार (अंतर्साक्षात्कार), धारणा (ध्यान केंद्रित करना) और ध्यान (मेडिटेशन) के चरणों के बाद राजयोगी समाधि (ब्रह्म के साथ एख हो जाना) की दशा में चला जाता है. अंतिम योग ज्ञानयोग है, इसके भी चार चरण हैं-विवेक, वैराग्य, षड-संपत (वे छह गुण जिन्हें मानसिक नियंत्रण और अनुशासन के जरिए पा सकते हैं) और अंतिम अवस्था मुमुक्षता की होती है. इसमें आदमी मुक्ति के लिए आंतरिक तौर पर पूरी तरह बेचैन हो जाता है. उसकी तलाश उस परम सत्य को पाने की होती है. जब वह उस पवित्र, परम ब्रह्म से एकाकार हो जाता है, आख़िरकार मोक्ष को पा लेता है.

व्यालोक

vyalok.chauthiduniya@gmail.com

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि किस तरह इक़बाल तस्करी की दुनिया में आगे बढ़ता गया, वहीं लेखक साहित्य और चित्रकला से जुड़ता गया. इससे आगे पढ़िए इस अंक में...

मुसलमान

आबिद सुरती

बीच में दो दिन का अंतर देकर रात में दो बजे के पहले वह लिबर्टी हाउस के अपने मकान से जीप से निकला. (वहां से वाहन द्वारा डोंगरी पहुंचने में ज़्यादा से ज़्यादा दस मिनट का समय लगता है.)

लगभग उसी समय लॉरी आकर मुंडागली के मुहाने पर रुकी. लड़के तैयार खड़े थे. लॉरी के अगले हिस्से से बाहर कूदकर ड्राइवर पिछले हिस्से में आया और ऊपर चढ़ गया.

इक़बाल परेशान हो उठा. एक ओर उसकी दसवीं कक्षा की परीक्षाएं शुरू हो गई थीं, दूसरी ओर सप्ताह में एक-दो-बार आने वाली लारियां अब नियमित रूप से हर तीसरे दिन आने लगी थीं. एक तरफ़ पढ़ाई की चिंता थी तो दूसरी ओर ज़ोरों से चल रहे धंधे को संभालना था.

इंस्पेक्टर भेसाड़िया की जीप मेट्रो सिनेमा के पास से दायीं ओर मुड़ गई. एक मिनट में वह एसीबी के मुख्यालय बोरीबंदर पहुंचा. तीनों सीआईडी वाले उनकी राह देखते मुख्यालय के प्रवेशद्वार पर खड़े थे.

जीप रुकते ही तीनों अंदर चढ़े. एक इंस्पेक्टर भेसाड़िया की बगल में बैठा. दूसरे दोनों पीछे के हिस्से में बैठ गए. जीप फिर स्टार्ट हुई.

उधर मुंडागली में ट्रक ख़ाली करने की शुरुआत हो चुकी थी. ट्रक के ऊपर चढ़ा ड्राइवर एक-एक बोरी खींचकर नीचे खड़े लड़के को थमाता था. मलबारी लड़के पीठ पर बोरियां लादकर चूहों की तरह अंधेरी गली में दौड़ जाते थे.

बोरियों का ढेर इक़बाल की कोठरी में जमा हो रहा था. पूरी लॉरी ख़ाली करने में कम से कम दो घंटे लगने वाले थे. और अभी तो पांच मिनट भी नहीं बीते थे.

जीप बोरीबंदर से आगे बढ़कर मोहम्मद अली रोड पर आई और रात के सन्नाटे में एक धमाका हुआ. इंस्पेक्टर भेसाड़िया के साथ तीनों सीआईडी के लोग बाहर कूद पड़े. उन्होंने देखा कि जीप का पिछला एक टायर पंक्चर हो गया था. फ़ौरन एक सीआईडी मैकेनिक की खोज में दौड़ा.

लगभग एक घंटा बीत चुका था. लॉरी आधी खाली हो चुकी थी. अभी आधी बाक़ी थी.

मैकेनिक की खोज में गया आदमी यहां-यहां भटककर अकेला वापस आ गया. रात के समय मैकेनिक मिलना मुश्किल था. सुबह होने का इंतज़ार नहीं किया जा सकता था. अंत में भेसाड़िया ने ख़ुद ही मैकेनिक बनने का फ़ैसला किया.

आस्तीनें चढ़ाकर उसने जीप के पिछले हिस्से में रखा स्पेयर टायर निकाला और जैक लगाकर टायर बदलने के काम में जुट गया.

हक़ीक़त में मोहम्मद अली रोड से पैदल चलकर पांच-सात मिनट में मुंडागली पहुंचा जा सकता है. इसके बदले उन्होंने मैकेनिक तलाशने में और टायर बदलने में दो घंटे जाया कर दिए.

नया टायर लगाकर जब उनकी जीप पालखी मुहल्ले में दाख़िल हुई तो उस समय लॉरी बाहर निकल रही थी.

साहब एक सी.आई.डी. वाले ने उसे देखकर कहा, ट्रक वापस जा रही है.

इंस्पेक्टर भेसाड़िया को इस समय उस ट्रक में दिलचस्पी नहीं थी. वह मुंडागली के मुहाने पर आया और जीप एक तरफ़ पार्क करके तीनों सी.आई.डी. के साथ अज़ीज़ दिलीप के अड्डे पर पहुंचा. अब तक शराबियों की भीड़ छंट चुकी थी. अड्डा क़रीब-क़रीब ख़ाली था.

इंस्पेक्टर भेसाड़िया की जीप मेट्रो सिनेमा के पास से दायीं ओर मुड़ गई. एक मिनट में वह एसीबी के मुख्यालय बोरीबंदर पहुंचा. तीनों सीआईडी वाले उनकी राह देखते मुख्यालय के प्रवेशद्वार पर खड़े थे.

एक लड़का शीशे के गिलासों और प्लेटों को पानी से भरे कनस्तर में डुबोकर पोंछने में व्यस्त था. घर जाने के पहले चंदू आज की आमदनी का हिसाब जोड़ रहा था. उसकी उंगलियां तेज़ी से नोट गिन रही थी.

अचानक भेसाड़िया को सामने खड़ा देख वह अवाक रह गया. उसका पहलवानों जैसा सीना बैठ गया. एक सीआईडी वाला दरवाज़े में खड़ा था, बाक़ी दो अड्डे की तलाशी ले रहे थे.

बैठिए, साहब. पहले झटके से उभरकर उसने सारे नोट मेज़ के दराज़ में सरका दिए, क्या लोगे व्हिसकी, रम, ब्रांडी या फैनी? माल आज ही आया है.

कितना आया है?

बस ज़रूरत भर का.

कितना?

आप देख सकते हैं. चंदू ने फैनी की बोतलों की ओर इशारा किया.

यहां पर एक दर्ज़न क्रेट से ज़्यादा माल रखने की गुंजाइश ही नहीं है.

बाक़ी माल कहां गया?

वह चौंका, क्या कहते हैं, साहब?

बीच का टेबल एक तरफ़ खिसकाकर इंस्पेक्टर भेसाड़िया ने उसके कॉलर पर अपना पंजा जमाया, बोल, हर सप्ताह जो दो से तीन ट्रक माल यहां उतरता है, वह कहां जाता है?

अब चंदू की समझ में सब कुछ आ गया. इक़बाल के बारे में पुलिस वालों को ज़रूर किसी ने ख़बर दी होगी. उन्होंने कड़ी नज़र रखी होगी और अंदाज़ लगा लिया होगा कि माल इक़बाल का नहीं, बल्कि अज़ीज़ दिलीप के अड्डे का है. अब उसके सीने में ज़ोर आया, क्योंकि इसमें उसकी कोई ग़लती नहीं थी.

साहब क़सम खाकर कहता हूं, हमारे यहां कुछ क्रेटों से अधिक माल कभी नहीं आता.

तुम ऐसे नहीं मानोगे... कहते हुए इंस्पेक्टर भेसाड़िया ने चांटा रसीद करने के लिए अपना हाथ उठाया.

उसी समय अड्डे की तलाशी ले रहा एक सीआईडी वाला बोल उठा, साहब, यहां एक तलवार और गुप्ती भी है.

देख बेटा, भेसाड़िया का हाथ झुक गया, अब तुम्हारा गुनाह डबल हो गया है, सच-सच नहीं बताएगा तो पूरे एक साल के लिए अंदर हो जाएगा.

मैंने सच ही कहा है, साहब... मैं कुछ नहीं जानता.

अचानक भेसाड़िया ने चंदू को थप्पड़ जमा दिया. चंदू पर इसका तनिक भी असर न हुआ. ऐसे दो-पांच घूंसे भी उसके कसे हुए जिस्म के लिए फूल बराबर थे.

उल्टे-सीधे पांच-छह झापड़ मारने के बाद भेसाड़िया समझ गया कि उसके सामने खड़ा पहलवान इतनी आसानी से अपना मुंह नहीं खोलने वाला है, लॉकअप में डालकर उसकी अच्छी तरह मरम्मत करनी होगी.

चंदू के हाथों में हथकड़ी डाल दी गई. थोड़ी दूर पर गिलासों और प्लेटों के ढेर के पास कांपते लड़के को भी कलाई पकड़कर एक सी.आई.डी. वाले ने खींच लिया. शराब के अड्डे से बाहर निकलने के पहले भेसाड़िया को ख्याल आया कि यहां मुंडागली की भूल-भुलैया में कुछ गटरें और दो मकान हैं- एक गर्डिया स्कूल, दूसरा अब्बासी मंज़िल. एक नज़र उन्हें भी देख लेने में क्या हर्ज़ है. उसने चंदू और उस लड़के को अंदर ही बैठाकर बाहर से दरवाज़ा बंद कर दिया.

रात ढल चुकी थी. क़रीब की ख़ोजा मस्जिद से बांगी (मुअज़्ज़िन) अज़ान दे रहा था. उसकी सुरीली आवाज़ भोर के नीम अंधेरे में मीठी लग रही थी. मीठी नींद में सोए पक्के नमाज़ी आंखें मलते हुए जग रहे थे. इक़बाल की भी आंखें खुल गईं.

रात के दो बजे तक उसने पढ़ाई की थी. दो से चार तक घर में माल उतारा था. चार बजे के बाद बस थोड़ी देर के लिए उसकी आंखें लगी थीं. और एक घंटे के अंदर ही वह फिर उठकर बैठ गया था. वास्तव में उसका यह रोज़ के जगने का समय था.

फ़ौरन उसने नमक से दांत घिसकर कुल्ला किया और फिर नमाज़ पढ़ने के लिए नीचे उतरा. उसने देखा कि दो सीआईडी वालों के साथ एक इंस्पेक्टर मुंडागली की गटरों में कुछ खोज रहा है.

वह चौंक उठा. वे क्या ढूंढ़ रहे हैं, यह समझने में ज़्यादा देर नहीं लगी. उसकी इच्छा हुई कि वह उलटे पांव लौट जाए, पर ऐसा करने से नमाज़ का वक़्त निकल जाता और यह उसे गवारा नहीं था.

(अगले अंक में जारी)

एक महिला की सच्ची दोस्त...

कहते हैं कि किसी भी महिला के सबसे अच्छे साथी हीरे होते हैं, लेकिन एचपी का सिग्नेचर लेडी केस भी आजकल की मोबाइल वुमेन के लिए एक परफेक्ट साथी है. इस केस को आज की वुमेन को ध्यान में रखकर डिज़ाइन किया गया है. स्टाइल के साथ उपयोगिता का संगम इस बैग को हर तरह से सबका पसंदीदा बनाता है. साथ ही यह मल्टीपरपस यूज़ में भी आ सकता है. इसे न केवल ऑफिस ले जाने के लिए एक सेंसिबल हैंडबैग के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है, बल्कि छुट्टियों में या वीकेंड पर ट्रैवल करने पर भी इसे साथ लेकर जाया जा सकता है. लेदर ट्रीमिंग की लुक देने वाले नायलॉन फैब्रिक में बने होने की वजह से यह बैग काफी आकर्षक दिखता है. यह बैग केवल देखने में ही सुंदर नहीं है, बल्कि ज़रूरत की काफी चीज़ें भी इसमें आ जाती हैं. आप अपने कई सामान इस बैग में एक साथ लेकर चल सकतीं हैं. मेकअप और रोज़ाना के आम सामान के साथ-साथ इसमें टेक-सेवी महिलाओं के लिए दोहरी ज़िप के साथ इसमें नोटबुक कंपार्टमेंट और एक रिमूवेबल स्लीव भी है, जिसमें 15 इंच का स्क्रीन फिट हो जाता है. यह लैपटॉप सपोर्टेबल डिवाइस है. इसके अलावा इसके बाहरी पॉकेट्स में बिज़नेस कार्ड, मोबाइल फोन, टिकट, मोबाइल एक्सेसरी आ जाएंगे. साथ ही अन्य निजी चीज़ों जैसे पैसे, मेक-अप इत्यादि को रखने के लिए बैग के कोने पर एक डिटैचेबल पर्स भी दी गई है जिससे अलग से बैग साथ लेकर चलने का झंझट खत्म हो जाता है. तो है न यह बड़े काम की चीज़...

लेट द म्यूज़िक प्ले ...

संगीत का हर उतार चढ़ाव आपकी टी-शर्ट और कैप पर बने स्पेशल डिज़ायनों पर भी नज़र आएगा.

किसी डिस्को पार्टी में जाना हो या समोसा पार्टी में, टी-पार्टी हो या किटी पार्टी, किसी भी जगह म्यूज़िक के बिना बात नहीं बनती. लोग ऐसी पार्टियों में ख़ुद को भीड़ से अलग दिखाने और कुछ ख़ास करने के लिए क्या-क्या उपाय नहीं ढूंढ़ते हैं. एक आसान तरीक़ा और भी है. ज़रा सोचिए, मद्धिम रोशनी हो और कुछ भी ठीक से नज़र नहीं आ रहा हो, ऐसे में पार्टी का भरपूर मज़ा दिलाने के लिए आपकी टी-शर्ट और कैप तैयार होती है. संगीत का हर उतार चढ़ाव आपकी टी-शर्ट और कैप पर बने स्पेशल डिज़ाइनों पर भी नज़र आएगा. ये स्पेशल कैप और टी-शर्ट दरअसल एक गैजेट अपैरल हैं, जिसमें आवाज़ से सक्रिय हो जाने वाले डिवाइस लगे होते हैं और संगीत के उतार-चढ़ाव को मापकर इक्वलाइज़र की तरह रोशनी करते हैं.

यह टी-शर्ट और कैप लड़के और लड़कियों दोनों के लिए उपलब्ध हैं. इस इक्वलाइज़र में साधारण डिसप्ले के अलावा स्टार, सर्किल मोटिफ, यूएफओ और लड़कियों के लिए ख़ास बटरफ्लाई और डिवा डिज़ाइन के अलावा फैंसी-आर्ट वाले टी-शर्ट भी आते हैं. ये इलेक्ट्रॉनिक टी-शर्ट कोई भारी-भरकम न होकर केवल 150 से 200 ग्राम तक के ही होते हैं. टी-शर्ट और कैप दोनों ही हर साइज़ में मार्केट में उपलब्ध हैं.

100 प्रतिशत कॉटन फैब्रिक, वॉशेबल टी-शर्ट में यह सिस्टम इनर पॉकेट के पास लगा होता है. इसमें ऑन या ऑफ स्विच के साथ केवल बैटरी कंपार्टमेंट होता है. इसके लिए केवल बैटरी की ज़रूरत पड़ती है. इन टी-शर्ट में सभी साइज़ मिल रहे हैं. गर्मी के मौसम में इलेक्ट्रॉनिक कैप ज़रूरत भी है और फ़ैशन भी, चिलचिलाती धूप में बाहर निकलने पर यह कैप धूप से बचाने का काम करेगी और पार्टी हॉल में घुसते ही बन जाएगी रॉकिंग पर्सनैलिटी का रॉकिंग अपैरल.

हर पल का हमसफ़र ...

अक्सर ऐसा होता है कि सफ़र करते समय या भीड़ भरी जगह पर हेडफोन लगाने के बावजूद बाहर की आवाज़ें भी कानों में जाकर मधुर गानों का मज़ा किरकिरा कर देती हैं. ऐसे में कुछ न कर पाने की चिढ़ मूड ख़राब कर देती है. ऐसी ही झुंझलाहट से बचाने के लिए सोनी ने एमडीआर-एनसी7 हेडफोन लांच किया है. यह हेडफोन बाहर की आवाज़ को रोक कर केवल फिल्टर्ड म्यूज़िक को कानों तक आने देता है. यह ख़ास हेडफोन क़ानों में पड़ने वाले ग़ैरज़रूरी एंबिएंस (आसपास के शोर) को 90 फीसदी तक कम कर देता है. आम हेडफोन की तरह ही दिखने वाले इस हेडफोन की बैटरी लाइफ़ 50 घंटे है और इसमें डुअल यूज कैपेसिटी भी उपलब्ध है. यानी यह तब भी चल सकता है जब बैटरी ख़त्म होने लगती है. साथ ही इसमें ऑन-ऑफ की सुविधा भी है जिससे आप एंबिएंस पर नियंत्रण कर सकते हैं जब बाहर की आवाज़ न सुननी हो तो इसे ऑन कर दें और अगर बाहर की बातों के साथ संगीत का मज़ा लेना तो इसे ऑफ रखें. दोनों ही सूरतों में संगीत नॉन-स्टॉप ही चलेगा.

इस हेड फोन के साथ एक प्लग अडैप्टर भी दिया गया है, जिससे स्टीरियो या हवाई सफर के दौरान इसे डुअल जैक सिस्टम में लगाया जा सके. 4,490 रुपए का यह मूड इनहैंसिंग हेडफोन 30-20,000 हर्ट्ज के रेंज में काम करता है. संगीत के दीवानों के लिए तो यह काम की चीज़ है ही, साथ ही भीड़ में भी शोर से बचे रहने का नायाब तरीक़ा भी है. अब तो चाहे हमसफ़र हो न हो, संगीत और इस हेडफोन का साथ हो तो सफ़र मज़े में कटेगा ही.

बढ़ रहा है ई-कचरे का ख़तरा

अभी हाल में ही संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनएपी) की एक बैठक हुई थी. इस बैठक का मक़सद था दुनिया के सबसे ख़तरनाक और तेज़ी से फैलते कचरे को पहचानना और उसके निबटारे के उपाय तय करना.

यह कचरा कोई एटमी हथियारों या बड़ी फैक्टरियों से निकलने वाला कैमिकल नहीं है. वैज्ञानिकों और पर्यावरणविदों की नींद उड़ा देने वाला यह कचरा हमारी बड़ी प्यारी और काम की चीज़ों का है. यह कचरा है, कंप्यूटर और मोबाइल फोनों का. यह ख़तरा ई-कचरे का है. जब से मोबाइल और कंप्यूटर जैसे इलेक्ट्रॉनिक सामानों ने हमारी ज़िंदगी में दस्तक दी है, तब से इन्हें दुनिया बदलने वाले सबसे बड़े आविष्कारों के रूप में देखा गया है. तेज़ ज़िंदगी और तकनीक के इन औजारों को हमने सिर-आंखों पर बिठाया. किसी ने तब शायद यह नहीं सोचा था कि यही औजार आगे चलकर हमारी लिए एक नई मुसीबत खड़ी करने वाले हैं. यूएनएपी के आंकड़े के मुताबिक दुनिया भर में हर साल करीब दो से पांच करोड़ टन ई-कचरा पैदा होता है. मतलब यह कि अगर इस कचरे का ढेर लगाया जाए तो एवरेस्ट के बराबर का पहाड़ तैयार किया जा सकता है. इस कचरे में सबसे बड़ा हिस्सा यूरोपीय संघ और अमेरिका जैसे विकसित अर्थव्यवस्थाओं का है. एक अनुमान के मुताबिक ई-कचरे का ख़तरा अगर इसी गति से बढ़ता रहा तो धरती पर रहने लायक ज़मीन भी नहीं बचेगी. सबसे बड़ी परेशानी यह है कि अगर कोई उपाय नहीं किया गया तो इसकी दर बढ़ती ही जाएगी.

संचार क्रांति के साथ ही दुनिया में मोबाइल फोनों, कंप्यूटरों और दूसरे इलेक्ट्रॉनिक मशीनों की बाढ़ आ गई. पहले-पहल तो ये एक स्टेटस सिंबल और विलासिता के सामान की तरह रहे, लेकिन इनकी उपयोगिता ने इन्हें सबके लिए ज़रूरी बना दिया. तकनीक में आए सुधार ने इन्हें आम आदमी की पहुंच लायक बना दिया. धीरे-धीरे विलासिता के सामान रोज़मर्रा के ज़रूरत के सामान बन गए, लेकिन तकनीक की इसी

छलांग ने परेशानियां भी पैदा कर दीं. मोबाइल और कंप्यूटर जैसे सामान जैसे-जैसे लोकप्रिय और सस्ते होते गए, वैसे-वैसे उनका इस्तेमाल करने वाले भी बढ़ते गए. ई-रिवोल्यूशन का दौर चला और अभी तक चल रहा है. लेकिन इस रिवोल्यूशन के भी नियम डारविन के इवोल्यूशन के नियम से अलग नहीं थे.

तकनीक की होड़ में जो पुराने पड़ते गए वह पीछे छूट गए. इन औजारों की पहली जेनरेशन के ख़त्म होते ही इनके निपटारे की ज़रूरत आ पड़ी. बिना वैज्ञानिक निपटारे के इस ई-कचड़े को ठिकाने नहीं लगाया जा सकता. अब यह कचड़ा इस तरह फैल चुका है कि मौजूदा उपायों से इसके निपटारे की कल्पना भी नहीं की जा सकती. हर साल क़रीब डेढ़ करोड़ टन ई-कचरा हमारी धरती में छोड़ दिया जाता है. 1992 में इस ख़तरे को पहली बार पहचाना गया और इसके निपटारे के लिए क़ानून बनाने की मांग रखी गई. बेसिल में हुई इस बैठक में ई-कचरे के निपटारे के लिए दिशा-निर्देश तय किए गए, लेकिन हाल तक इस दिशा में कोई पहल नहीं हुई. ई-कचरे के सबसे बड़े उत्पादक विकसित देशों ने अब तक कोई बड़ा क़दम नहीं उठाया है. उलटे नाइजीरिया और घाना जैसे देशों में इस कचरे को फेंका जा रहा है जो सरासर ग़ैरक़ानूनी है.

ऐसे में भारत के युवाओं की ज़िम्मेदारी और बढ़ जाती है, क्योंकि मोबाइल के इस्तेमाल में हम दुनिया में दूसरे नंबर पर हैं. इसके अलावा हम दूसरे ई-कूड़ों को पैदा करने में भी बहुत आगे हैं. दुनिया को इस ख़तरे से बचाने के लिए युवाओं को इस ख़तरे से आगाह कराने की ज़रूरत है. अच्छी बात है कि जापान जैसे कुछ देशों में ऐसे नियम बनाए गए हैं जो इस कचरे के निपटारे और दोबारा इस्तेमाल की ज़िम्मेदारी इलेक्ट्रॉनिक कंपनियों पर ही डालते हैं. धीरे-धीरे इस ख़तरे की तरफ कंपनियों ने भी ध्यान दिया है. ज़रूरत है कि एक ऐसा सिस्टम बनाया जाए, जिससे यह कचरा सड़कों पर न फेंका जाए बल्कि सीधे री-सायकिलिंग यूनिटों में पहुंचे. ज़रूरत है कि इसके लिए युवा पीढ़ी पहल करे और जागरूक हो और जिन देशों में अभी भी इस समस्या को नहीं समझा गया है वहां भी यह संकेत साफ-साफ पहुंचे. ज़रूरत है कि यह पहल ज़ोरदार हो, आख़िर यह हमारी धरती का सवाल है.

ज़रा ज़रा टच मी...

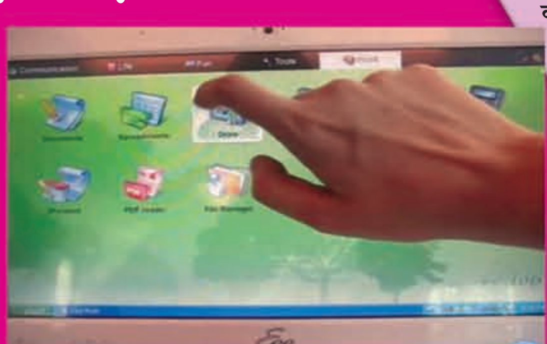

टच यानी स्पर्श से तकनीक का रोमांस अभी ज़ोरों पर है. तभी तो टचस्क्रीन मोबाइल के बाद टचस्क्रीन कंप्यूटर और अब ख़ास ई-टॉप. एसस कंपनी ने टचस्क्रीन ई-टॉप ईटी 1602 लांच किया है. यह बच्चों और शुरुआत करने वालों के लिए बेहतरीन कंप्यूटर है, क्योंकि इसमें ख़ास के साथ आम डेस्कटॉप कंप्यूटर की सारी ख़ूबियां हैं. बहुत से तारों की झंझट के बिना यह सिर्फ एक पावर कॉर्ड से जोड़ देने पर काम करने लगता है, बाकी सारे फीचर्स के लिए बस इसे छूने भर की ज़रूरत होती है. इसमें 1.6 जीएचज़ेड इंटेल एटॉम सीपीयू और एक जीबी मेमोरी सपोर्ट के साथ 15.6 इंच का एलसीडी स्क्रीन है. इसमें अपनी पसंद के हिसाब केवल एक टच से म्यूज़िक, वीडियो और कई मज़ेदार

एपलिकेशंस का लुत्फ उठा सकते हैं. इसकी एक ख़ासियत और है कि इसमें ऑपेरा टच है जिससे केवल एक टच से इंटरनेट सर्फिंग का विकल्प खुल जाता है और किसी की-बोर्ड की ज़रूरत नहीं पड़ती है. स्लीम लुक वाला यह ई-पीसी बहुत स्टाइलिश है और ज़्यादा जगह भी नहीं लेता. इसकी क़ीमत 44,000 रुपए है, जिसके साथ दो सालों की मुफ्त वारंटी है.

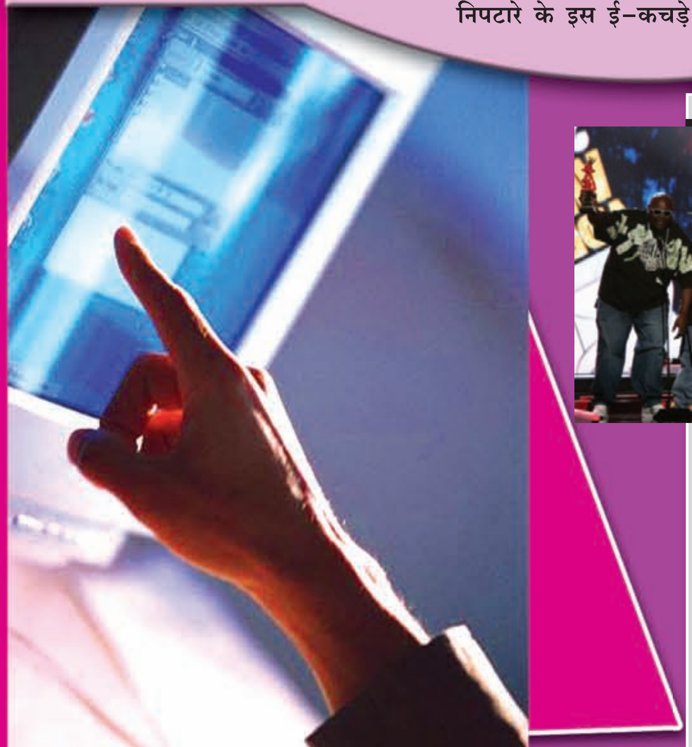

गैज़ेट गहना...

आजकल की लड़कियों के क्या कहने. उन्हें सिर्फ फ़ैशनेबल ही नहीं, पैशनेबल चीज़ें भी ख़ूब भाती हैं. ऐसी एनी टाइम लकी गो चार्मिंग गर्ल्स के लिए गैज़ेट्स पसंदीदा टाइम पास बन रहे हैं. अब गले का पेंडेंट गैज़ेट बन कर डाटा स्टोर करे, तो इससे मज़ेदार बात भला क्या होगी? किसी पार्टी में चमचमाता, गले की शोभा बढ़ाता पेंडेंट यदि ऑफिस या वर्किंग प्लेस में डाटा स्टोर करके संभालने के काम आए तो क्या बात है. इसमें भी कई रंग और आकार हों तो मज़ा ही कुछ और है. मार्केट में यह हार्ट, प्लस, ब्रेकिंग हार्ट, और अन्य आकारों में उपलब्ध हैं. इस पेंडेंट कम यूएसबी डिवाइस की क़ीमत स्टोरेज मेमोरी के हिसाब से तय होती है.

गेम के लिए भी अवार्ड

आपने बड़े-बड़े फिल्मी पुरस्कार समारोहों की चकाचौंध तो देखी ही होगी, लेकिन गेमिंग की दुनिया में भी चकाचौंध की कमी नहीं. गेमिंग के धुरंधरों को सम्मानित करने और साल के सबसे बेहतरीन गेमों को पुरस्कार देने के लिए गेमिंग की दुनिया में भी पुस्कार समारोह आयोजित किए जाते हैं. इन पुस्कारों में गोल्डन जॉयस्टिक सबसे पुराना है. इन पुरस्कारों को कितनी गंभीरता से लिया जाता है इसका अंदाज़ा आप इसी से लगा सकते हैं कि बाफ्टा, जो ब्रिटिश फिल्म एक्टर्स की अकादमी है, के द्वारा भी गेमिंग के लिए अवार्ड दिए जाते हैं. हैरानी की बात है कि महान निर्देशक स्टीवन स्पीलबर्ग को भी अपना पहला बाफ्टा अवार्ड किसी फिल्म के लिए नहीं एक गेम के लिए मिला. ख़ैर, इस साल के अवाड्र्स का समय नजदीक आ रहा है और सभी को बड़ी बेसब्री से उनका इंतज़ार है. वैसे आप इन अवाड्र्स की वेबसाइट पर जाकर अपने पसंदीदा गेम के लिए वोट भी कर सकते हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

हार की जीत

डेक्कन बना दनादन क्रिकेट का बादशाह

उभरते सितारे

प्रज्ञान ओझा : फिरकी का जादूगर

प्रज्ञान प्रयास ओझा में प्रतिभा है, यह तो सब जानते थे लेकिन आईपीएल के दूसरे सीजन में जैसा खेल उन्होंने दिखाया उससे वह भारत के सबसे महत्वपूर्ण

वामहस्त स्पिनर के तौर पर पक्के हो गए हैं. पिछली बार आख़िरी पायदान पर रही डेक्कन को ऊंचाई तक पहुंचाने में उनकी और आरपी सिंह की भूमिका महत्वपूर्ण रही. शांत स्वभाव के ओझा की गेंदों में जो कसाव और घुमाव है, वह उन्हें किसी भी टीम के लिए बड़ा ख़तरनाक बना देता है.

मनीष पांडे : पावर एंड पेसेंस

स्वीप करने के लिए क्रीज़ से बाहर आना और फिर फ्लिक लगा देना, मनीष पांडे ने आईपीएल को यह शॉट दिया और आईपीएल ने दिया भारतीय क्रिकेट को एक नया सितारा. अंडर-19 विश्व कप के सितारों में एक मनीष को बेंगलौर रॉयल चैलेंजर्स के हैवीवेट्स के बीच खेलने का मौका भले कम मिला, लेकिन

जैसे ही मिला तो उन्होंने दो यादगार पारियां खेल दीं. आईपीएल के इतिहास में वह पहले शतकवीर भारतीय के रूप में दर्ज़ हो गए हैं. अब आगे भी उन पर निगाहें और उम्मीदें लगी रहेंगी.

शादाब जकाती : गोवा का नया सितारा

लगता है गोवा के खिलाड़ियों के लिए आईपीएल का कोई ख़ास महत्व है. जहां पिछली बार स्वनिल अस्नोदकर ने धमाल मचाया था, तो इस साल शादाब बशीर जकाती ने अपने प्रदर्शन से सबका ध्यान खींचा. चेन्नई सुपर किंग के लिए खेलते हुए

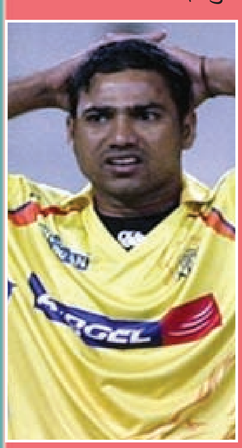

फिरकी गेंदबाज़ शादाब बशीर जकाती ने अपने पहले ही मैच से कमाल दिखाना शुरू कर दिया. लगता है कि दस साल के घरेलू अनुभव रखने वाले जकाती को दक्षिण अफ्रीका भी घर जैसा ही लगा.

कामरान ख़ान : फर्श से अर्श तक

शायद आईपीएल-2 के सबसे रोमांचक क्षण के रूप में कोलकाता नाइट राइडर्स और राजस्थान रॉयल्स के टाई वाले मैच के उस सुपर ओवर को याद रखा जाएगा, जहां शेन वार्न ने गेंद एक ऐसे गेंदबाज़ को थमा दी, जो

आजमगढ़ के बढ़ई का बेटा था और जिसका अंतरराष्ट्रीय अनुभव शून्य था. राजस्थान ने वह मैच जीता और कामरान ख़ान ने इस आईपीएल से सचमुच अपनी क़िस्मत बदल दी. संदिग्ध एक्शन के बावजूद कामरान को भारत में तेज़ गेंदबाज़ी के नवीनतम टैलेंट के तौर पर देखा जा कहा है.

अमित सिंह : गति का कमाल

किसी युवा खिलाड़ी की गेंदें अगर राहुल द्रविड़ और रोस टेलर जैसे खिलाड़ियों के विकेट बिखेर दे तो

उसकी प्रतिभा का लोहा मानना ही होगा. अमित सिंह ने राजस्थान रॉयल्स के लिए चार मैचों में आठ विकेट झटके और औसत बस 5 रन प्रति ओवर. उनके एक्शन पर उठा विवाद भी ख़त्म हो गया है. उम्मीद है कि वह जल्द ही बड़े कारनामे करेंगे.

आठ शहर, 37 दिन, 59 मैच, और क्रिकेट के ख़ुमार में डूबे दो देश. आईपीएल का दूसरा सीज़न आख़िरकार ख़त्म हो गया. जोश और रोमांच का पर्याय बन चुके आईपीएल का अंत भी उसके आगाज़ की तरह शानदार हुआ. आख़िरी गेंद तक चले रोमांच का अंत हुआ डेक्कन चार्जर्स के पक्ष में. चैलेंजर्स का चैंपियन बनने का सपना अधूरा रह गया. छह रनों से मैच जीत कर डेक्कन ने आईपीएल-2 के ख़िताब पर क़ब्ज़ा जमा लिया. लेकिन यह ऐसी जीत रही जिसमें जीतने वाला तो जीता ही, हारने वाले की भी जीत ही हुई. पिछली बार सबसे फिसड्डी रही टीमें इस बार शीर्ष पर रहीं. ज़ाहिर है, इस फाइनल से क्रिकेट सबसे बड़े विजेता के तौर पर उभरा. क्रिकेट के खेल को समझने वालों ने फिर मान लिया कि इस खेल में क्रिकेट से बड़ा खिलाड़ी कोई नहीं है. जीत उसी के हाथ लगेगी जो इस खेल को समझ सके. इस फाइनल से यह भी साबित हो गया कि टी-20 के खेल में किसी की क्षमता, अनुभव और सारी तैयारी केवल एक पल तक सिमट कर रह जाती है. जो भी खिलाड़ी और टीम इस एक पल में अपने स्नायुओं पर नियंत्रण रख सके, जो इस दवाब को झेल सके, वही विजेता बन पाएगी.

इस फाइनल से यह साबित हो गया कि चीयरलीडर्स और टाइमआउट्स और ऐसी तमाम चीज़ें उस एक क्षण में बेमतलब हो जाती हैं. डेक्कन और चैलेंजर्स के बीच के मैच में भी ऐसा ही हुआ. दोनों टीमें पिछली बार लीग में सबसे नीचे रही थीं, उनके बीच के फाइनल में जीत और हार के बीच भी कोई ख़ास फ़ासला नहीं था. फ़र्क़ सिर्फ़ इतना दिखा कि अहम मौके पर आकर चैंलेंजर्स की टीम ख़ुद को बिखरने से नहीं रोक सकी. जहां डेक्कन की टीम ने छोटे स्कोर का पीछा करते हुए चुस्त फील्डिंग से दबाव बनाए रखा, वहीं बेंगलुरू की टीम के धुरंधर बल्लेबाज़ों ने ख़राब शॉट्स पर विकेट गंवाए. द्रविड़ जैसे खिलाड़ी कैच छोड़ते नज़र आए. इसी धैर्य से डेक्कन चार्जर्स आख़िरी पायदान से जीत के शिखर तक पहुंच पाए हैं. हालांकि हारने वालों ने भी लंबा फ़ासला तय किया था. टेस्ट टीम के लायक भी न रह जाने वाले ख़िलाड़ियों के बूते चैंलेंजर्स ने भी अपनी स्थिति सुधार ली है. कुंबले की कप्तानी में बेहतरीन खेल दिखाकर उन्होंने फिसड्डी टीम के दाग़ को धो डाला है. फाइनल के साथ आईपीएल-2 के पूरे तमाशे को भी अर्द्धविराम लग गया है. अर्द्ध इसलिए, क्योंकि अगले ही महीने टी-20 का विश्वकप शुरू होगा और फिर अक्टूबर में हर देश की टी-20 चैंपियन टीमों का मुक़ाबला, यानी चैंपियंस लीग आयोजित होगा. अभी टी-20 का ख़ुमार थमा नहीं है, बस ज़रा ठहर गया है.

आईपीएल-2 का दस का दम

जिनके लिए याद रहेगा आईपीएल

1. स्ट्रेटजिक ब्रेक्स और नाराज़गी जताते खिलाड़ी
2. नाचते-थिरकते ललित मोदी
3. चीयरलीडर्स के जलवे
4. गिलक्रिस्ट, हेडन, सचिन और युसूफ पठान के छक्के
5. दिल्ली टीम के लिए पूरे टूर्नामेंट में बेंच पर बैठे रहने के वाले ग्लैन मैकग्रा
6. मनीष पांडे का शतक और कामरान ख़ान की गेंदबाज़ी
7. शेन वार्न का मैदान पर बीयर गटकना
8. बॉलीवुड सितारों के मुरझाए चेहरे
9. फेक आईपीएल प्लेयर की सनसनी
10. और एक महीने से ज़्यादा बेहतरीन क्रिकेट के लिए...

तिरछी टोपी वाले

आईपीएल में टीम की जीत के साथ-साथ खिलाड़ियों ने रिकार्डों की भी बरसात कर दी. दनादन क्रिकेट में रनों और विकेटों का खेल भी चलता रहा और जिन खिलाड़ियों ने इस खेल में बाज़ी मारी वे रहे मैथ्यू हेडन और आरपी सिंह. सबसे ज़्यादा रन बनाने और विकेट लेने वाले इन खिलाड़ियों को क्रमशः नारंगी और बैंगनी रंग की टोपियों से नवाजा गया. मैथ्यू हेडन के बल्ले ने तो इस आईपीएल में कहर ढा दिया. अपने अंतरराष्ट्रीय करियर के अंत के बाद चेन्नई सुपर किंग्स के लिए पारी का आग़ाज़ उन्होंने जिस अंदाज़ में किया, उससे लगा कि अभी हेडन की बाजुओं में बहुत जान बाकी है. हेडन ने इस आईपीएल में 572 रन बनाए, जो उनके नज़दीकी प्रतिद्वंदी से 77 रन अधिक थे. 52 की औसत और 140 से ऊपर की स्ट्राइक रेट से खेलने वाले हेडन ने अपनी टीम की सेमीफाइनल तक की राह आसान कर दी. उधर आरपी सिंह ने फाइनल तक अपनी टीम की गेंदबाज़ी की कमान संभाली और 23 विकेट लेकर आईपीएल-2 में सबसे अधिक विकेट लेने वाले बने. 18 के औसत और 7 रन प्रति ओवर से कम के ख़र्चे पर गेंदबाज़ी कर रहे आरपी ने इस प्रदर्शन से अपने डगमगाते करियर को भी पंख लगा दिए हैं. अब वह विश्व कप में भारतीय गेंदबाज़ी की कमान संभालते नज़र आएंगे.

थ्री चीयर्स फॉर द चीयर गर्ल्स

हर चौके-छक्के के साथ हवा में लहराती आतिशबाज़ी, विकेट गिरने पर गूंजता धमाकेदार संगीत और इस धूमधड़ाके के साथ ताल मिलाती ग्लैमरस चीयरगर्ल्स. आईपीएल-2 के 59 मैचों में नज़ारा कुछ ऐसा ही था. सचिन के हर छक्के का मुक़ाबला मुंबई इंडियंस की चीयरगर्ल्स के डांस मूव्स से था तो धोनी के ज़ोरदार चौके का स्वागत शिवमणि अपनी धमाकेदार ड्रमिंग से करते थे. यानी आईपीएल-2 का मतलब था जोश, जुनून और जलवा. तभी तो क्रिकेट के शॉट्स के साथ-साथ मंदिरा बेदी की शॉर्ट हेयर कट पर भी नज़रें जमी रहीं. चीयरलीडर्स की हर हरकत को मुरली की फिरकी के घुमाव की तरह परखा गया. तभी तो चीयरलीडर्स बनने के लिए हुए रियलिटी शो और आयोजनों में भीड़ उमड़ पड़ी, हालांकि भारत से चीयरलीडर्स बनने का सपना लेकर गईं लड़कियों को निराशा हुई, क्योंकि दक्षिण अफ्रीका में उन्हें अपना जलवा दिखाने का मौका नहीं मिला. वहां बस बाहर से आईं चीयरलीडर्स ही झूमीं. हालांकि दर्शकों को इससे कोई शिकायत नहीं थी. दनादन लगते छक्के और पलक झपकते ही बदलते मैचों के रोमांच को इन चीयरलीडर्स ने उफान तक पहुंचाया. जश्न, क्रिकेट और रोमांच, इससे ज़्यादा और क्या चाहिए था.

फ्लॉप शो

पीटरसन ने किया निराश

आईपीएल के सबसे महंगे खिलाड़ी, अपने पहले ही मैच से टीम के कप्तान, शुरुआत से पहले ही केविन पीटरसन के लिए आईपीएल-2 में ज़मीन तैयार हो चुकी थी, लेकिन अपने प्रदर्शन से पीटरसन ने निराश ही किया. लगभग आठ करोड़ की क़ीमत वाले केविन ने जिस तरह से रन बनाए और जैसी कप्तानी की, उससे तो यही लगा कि विजय माल्या के आठ करोड़ बेकार हो गए. अब अगले सीज़न में केविन को कप्तानी शायद ही मिले.

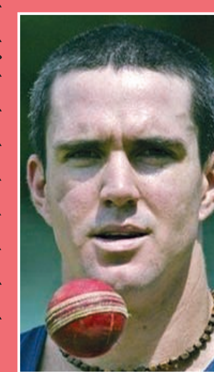

फ्लॉप रहे फ्लिंटॉफ

पीटरसन की तरह फ्लिंटॉफ भी शान से आए थे, लेकिन लौटे बड़े बेआबरू हो कर. पांच मैचों में पचास और दो विकेट लेने वाले फ्लिंटॉफ जब चोट की वजह से आईपीएल से बाहर हो गए तो उनकी टीम से ज़्यादा दूसरी टीमों ने उन्हें मिस किया. तुर्रा यह कि इस फ्लॉप शो के दौरान लगी चोट शायद उन्हें विश्व कप से भी बाहर कर दे. उधर, पूरे मैच न खेलने पर पैसे भी कटे यानी न माया मिली न राम.

नहीं चले नवाब

आईपीएल से पहले हर विरोधी कप्तान ने जब दिल्ली के ख़िलाफ़ रणनीति तय की, तो वीरेंद्र सहवाग के आगे सवाल का निशान लगा दिया. यानी अगर सहवाग चले तो कोई रणनीति नहीं चलेगी. दुर्भाग्य से कभी चोट से तो कभी फॉर्म से जूझते सहवाग ऐसा कुछ नहीं कर पाए. उनकी और गंभीर की जोड़ी से जो उम्मीदें लगी थीं, वे पूरी नही हुईं. हालांकि उनकी टीम जीतती रही. शायद सहवाग महत्वपूर्ण मैचों और विश्व कप के लिए कुछ बचा कर रखना चाहते थे.

चमके नहीं जयसूर्या

अगर गंभीर और सहवाग की जोड़ी वर्तमान का धमाका थी, तो जयसूर्या और सचिन की जोड़ी *ब्लास्ट फ्रॉम द पास्ट*. कुछ मैचों में इस धमाके की झलक देखने को भी मिली, लेकिन रंग नहीं जमा. जयसूर्या से जो उम्मीदें थीं उससे वह दूर रह गए. यहां तक की सचिन को उन्हें बाहर बैठाना पड़ा. हालांकि सचिन और जयसूर्या का एक साथ सलामी बल्लेबाज़ों के तौर पर उतरना इस आईपीएल के सबसे यादगार लम्हों में शुमार होगा.

भूटिया फिर बिकेंगे, कौन ख़रीदेगा?

भारतीय क्लब फुटबॉल में ज़ोरदार सरगर्मी है. हर क्लब अपने बही-खातों और टीम कांबिनेशन को दोबारा जांच रहा है. यह सब हो रहा है इंडिया के सबसे बड़े फुटबॉलर के लिए अपनी टीम में जगह बनाने के लिए. दरअसल भारतीय टीम के कप्तान बाइचुंग भूटिया की अचानक उपलब्धता ने यह हलचल मचा दी है. हुआ यूं कि मोहन बागान के कप्तान भूटिया एक टीम प्रैक्टिस में देर से पहुंचे और टीम ने उन पर कारण बताओ नोटिस ठोक दिया.

इससे नाराज़ बाइचुंग ने मोहन बागान को छोड़ने की बात कह दी और अब बाकी क्लब उन्हें अपने साथ देखना चाहते हैं. ऐसा हो भी क्यों न, बाइचुंग भारत के सर्वश्रेष्ठ फुटबॉलर हैं, टीम में उनके होने का मतलब है-जीत. फुटबॉल का यह सबसे बड़ा खिलाड़ी देश के सबसे छोटे राज्यों में से एक सिक्किम से निकला. सिक्किम से निकल कर भारतीय फुटबॉल के मक्का कोलकाता में ईस्ट बंगाल से शुरुआत करने वाले भूटिया जिस भी क्लब का हिस्सा रहे हैं, उसे भारतीय फुटबॉल में शीर्ष स्थान दिलाया है. 1995 में सिर्फ अठारह साल के बाइचुंग जब ईस्ट बंगाल से जेसीटी फगवाड़ा गए तो उसे उस साल का चैंपियन बना दिया. इसके बाद ईस्ट बंगाल में उनकी वापसी कप्तान के तौर पर हुई और उनकी कप्तानी में क्लब ने भारतीय फुटबॉल में अपना दबदबा और मज़बूत किया. 1999 में वह पहले भारतीय खिलाड़ी बने, जिसने देश के बाहर क्लब फुटबॉल में जगह बनाई. भूटिया इंग्लिश क्लब बरी एफसी का हिस्सा बने. जब 2003 में वह ईस्ट बंगाल वापस आए तो क्लब को आसियान कप में जीत दिलाई.

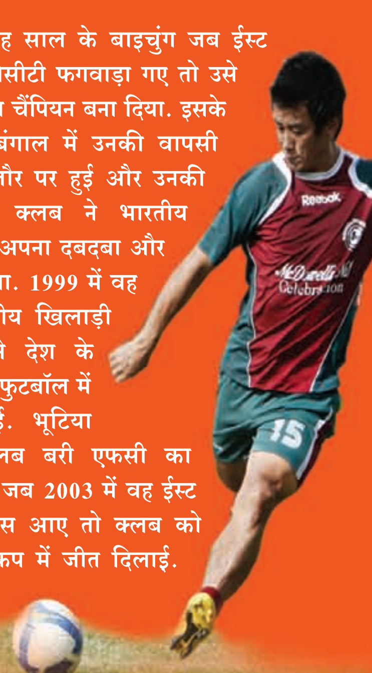

उनके आते ही मोहन बागान ने भी लगातार अच्छा खेल दिखाया है. ज़ाहिर है, भूटिया की मौजूदगी किसी भी टीम के लिए फ़ायदेमंद होती है. ऐसे में कोई भी क्लब उन्हें अपनी टीम का हिस्सा बनाना चाहेगा.

भूटिया को अपने क्लब का हिस्सा बनाने की होड़ में सबसे आगे उनका पुराना क्लब ईस्ट बंगाल है. वहीं गोवा का क्लब डेंपो भी उन्हें अपना हिस्सा बनाना चाहता है. डेंपो ने अभी-अभी भारतीय टीम में भूटिया के साथी सुनील क्षेत्री को साइन किया है. अब क्लब को उम्मीद होगी कि भूटिया भी उनके साथ आ जाएं तो राष्ट्रीय टीम का पूरा आक्रमण उनके साथ आ जाएगा. हालांकि फिलहाल भूटिया का दिल अपने पहले प्यार यानी अपने पहले क्लब-ईस्ट बंगाल-पर टिका लगता है. वहां के कोच सुभाष भौमिक ने भी उनमें दिलचस्पी दिखाई है. ईस्ट बंगाल सुनील क्षेत्री की कमी को भी पूरा करना चाहता है, ऐसे में भूटिया से बेहतर क्या विकल्प मिल सकता है. ख़ैर, भूटिया गोवा जाएंगे या कोलकाता में ही रुकेंगे यह तो उन्हीं को तय करना है. अब भूटिया भले ही नया क्लब चुन लें, लेकिन इस पूरे मामले से एक सवाल तो खड़ा होता ही है. हालांकि सवाल बहुत पुराना है. सवाल यह है कि जहां एक ओर दक्षिण अफ्रीका में क्रिकेट के खिलाड़ी मालामाल होने का खेलते हैं, वहीं भूटिया जैसे खिलाड़ियों को उपेक्षा झेलनी पड़ती है. बाइचुंग देश के सबसे बड़े खिलाड़ियों में हैं, फिर भी उन्हें वह सम्मान कभी नहीं मिला जिसके वह हक़दार थे. सम्मानों से लेकर पहचान बनाने तक में भूटिया जैसे दिग्गज अन्य ग्लैमरस खेलों के खिलाड़ियों से पीछे ही रहे. सरकारी प्रोत्साहन भी कभी नहीं मिला.

भूटिया स्पष्टवादी हैं, तिब्बत के समर्थन में उन्होंने बीजिंग ओलंपिक की मशाल लेकर चलने से मना कर दिया था, लेकिन इस पर भी उन्हें सहयोग नहीं मिला. देश में फुटबॉल की हालत भी छुपी नहीं है. इसी से तंग आकर एक समय भूटिया ने देश के बाहर मलेशिया में खेलने का मन बना लिया था. अब मोहन बागान प्रकरण ने फिर भारत के सबसे महत्वपूर्ण फुटबॉलर को सोचने पर मजबूर किया होगा. बाइचुंग तो फिर भी जाने-माने चेहरे हैं, आजकल टीवी पर भी नज़र आते हैं और तब भी उनका यह हाल रहा. जरा सोचिए, उनके साथ क्या होता होगा जो फुटबॉलर तो हैं, लेकिन अभी स्टार नहीं बने.

पावस नीर
pawas.chauthiduniya@gmail.com

फिल्मी धंधे को चाहिए विवादों का कंधा

बॉलीवुड में कुछ साल पहले तक फिल्मों के रिलीज होने से पहले उठे विवादों को चिंता का विषय माना जाता था, लेकिन अब तो फिल्में हिट और फ्लॉप ही होने लगी हैं विवादों के कारण. जब तक यह न हो, तब तक फिल्म अधूरी समझी जाती है. इसलिए अब आए दिन कभी गाने के बोल पर तो कभी टाइटल पर विवाद खड़ा हो ही जाता है. यानी आज यह बॉलीवुड का ट्रेंड सा बन गया है. दर्शकों को हॉल तक खींचने का यह एक कारगर हथियार बन गया है. पिछले साल *जोधा-अकबर* में लोगों ने जोधा के चरित्र को लेकर प्रश्न उठाया गया था, फिर फिल्म *फ़ैशन* में महिला मॉडलों के चित्रण को लेकर सवाल उठाए गए. ऐसे ही *सिंह इज किंग* में अक्षय कुमार को सरदार की भूमिका निभाने पर भी सवाल खड़े हुए .

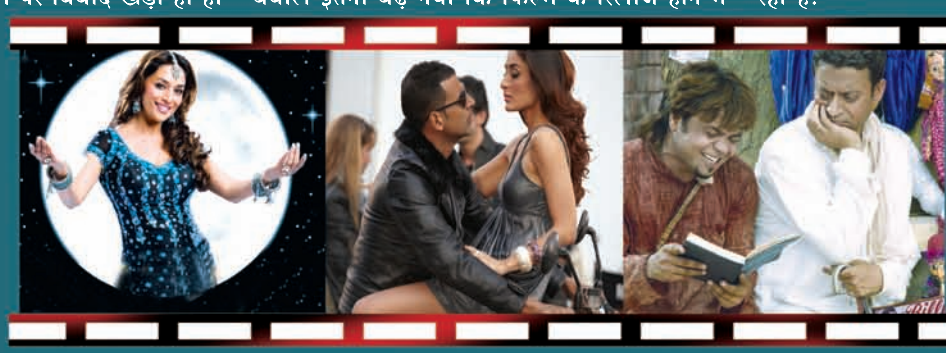

इससे पहले फिल्म *अशोका* में करीना कपूर के चरित्र-चित्रण पर विवाद भी देखने को मिला था. फिल्म *एक छोटी सी लव स्टोरी* में मनीषा कोइराला ने विवाद खड़ा किया था कि उनके नाम पर डुप्लिकेट के जरिए फिल्माए गए एक बेहद अंतरंग दृश्य को दिखा दिया गया. विवादित फिल्म महेश भट्ट की *क्रिमिनल* भी थी. इस फिल्म के रिलीज से ऐन पहले अख़बारों में विज्ञापन दिया गया था-मनीषा कोइराला की हत्या. मनीषा फिल्म की हीरोइन थीं और फिल्म में उनकी हत्या दिखाई गई थी. लेकिन अख़बारों में विज्ञापन ख़बर की शैली में छपा, जिससे एक बार तो लोगों ने मान भी लिया था कि मनीषा की हत्या हो गई.

इसी तरह *बिल्लू-बारबर* में टाइटल को लेकर बवाल इतना बढ़ गया कि फिल्म के रिलीज होने में अड़चन आ गई थी. इसमें *बारबर* शब्द को हटाने की मांग की गई थी. इससे भी अधिक हंगामा तो फिल्म *आजा नच ले* को लेकर बरपा था. रिलीज हो जाने के बाद भी उस फिल्म के एक गाने के बोल को बदला गया. इस फिल्म का विवाद तो कोर्ट तक जा पहुंचा था. अभी बिग बी की फिल्म *रण* प्रदर्शित भी ही नहीं हुई कि फिल्म के गाने पर रोक लगा दी गई. बताया जा रहा है कि गाने में राष्ट्रगान का मज़ाक उड़ाया गया है. गाने पर रोक लगने से फिल्म का प्रदर्शन ही रुक गया है.

इन दिनों अक्षय कुमार और करीना कपूर की फिल्म *कमबख्त इश्क* पर भी विवाद खड़ा हो गया है. इसके एक गाने में अंग्रेज़ी बोल हैं जो आपत्तिजनक माने जा रहे हैं. वूमैन आर गुड फॉर ओनली वन थिंग जैसे बोल इस फिल्म के प्रोमो में दिखाए जा रहे हैं. यह घोर आपत्तिजनक माना जा रहा है.

सवाल उठता है कि क्या इस तरह के विवाद सचमुच होते हैं या पब्लिसिटी स्टंट हैं. इस पर लोगों की राय अलग-अलग है. कई बार तो अभिनेता-अभिनेत्रियों के संबंधों को लेकर भी विवाद उठा दिया जाता है. अभी हाल में ही शाहिद कपूर, प्रियंका चोपड़ा और करीना कपूर का एक ऐसा ही मामला साफ-साफ देखने को आया. शाहिद कपूर और प्रियंका चोपड़ा की फिल्म *कमीने* आने वाली है. पिछले दिनों करीना की ओर से बयान मीडिया में आया कि शाहिद को प्रियंका से बचकर रहना चाहिए, क्योंकि वह हरमन बवेजा को छोड़ चुकी हैं. इससे पहले बताया जाता रहा कि *कमीने* के सेट पर शाहिद और प्रियंका काफी क़रीब आ गए हैं. बाद में कहा गया कि शाहिद का दिल फिर टूटा. यानी इन सबके पीछे शाहिद का भला सोचा गया न प्रियंका का. सोचा गया तो सिर्फ़ फिल्म-कमीने-की पब्लिसिटी का.

... तो ईर्ष्यालु हो गई हैं ऐश !

ऐश्वर्या राय आजकल कुछ अजीबो-ग़रीब व्यवहार करने लगी हैं. पता नहीं चल पा रहा कि उन्हें क्या हो गया है और वह क्या चाहती हैं. वह इन दिनों छोटी-छोटी बातों पर भड़कने लगी हैं. उन्हें आजकल कुछ बर्दाश्त नहीं हो पा रहा है. यहां तक कि पति अभिषेक बच्चन या उनके साथ कामों को लेकर पूछने पर भी वह भड़क जाती हैं. उनका गुस्सा कई बार तरह आउट ऑफ कंट्रोल हो जाता है. उनके गुस्से का शिकार कभी कैटरीना कैफ़ को होना पड़ता है तो कभी सोनम कपूर, तो कभी बारबरा को. गुस्से से लाल-पीली ऐश्वर्या और सोनम कपूर में कुछ ज़्यादा ही खटपट चल रही है. वजह यह है कि सोनम ने ऐश्वर्या को कह दिया कि वह हमारी पीढ़ी की नहीं हैं. बस इसी बात से ऐश्वर्या आग-बबूला हो गईं और कहने लगीं कि सोनम को इस बात के लिए मुझसे माफी मांगनी होगी. निश्चय ही उन दोनों की उम्र में ज़मीन आसमान का फ़र्क़ है. सोनम ठहरीं 23 वर्ष की और ऐश्वर्या पूरी 35 साल की. जब से *दिल्ली-6* में अभिषेक और सोनम की तारीफ़ होनी शुरू हुई है, तभी से ऐश्वर्या मसक्कली से चिढ़ी बैठी हैं. ऊपर से सोनम का यह कमेंट कि ऐश आजकल की जेनरेशन की नहीं हैं, ऐश कहां तक सह सकती थीं. उन्होंने पलटकर और तीखा जवाब दे दिया कि सोनम की इन बातों से तो उनके दिमाग़ और उनकी गंदी सोच के बारे में ही पता चलता है. ख़ैर, यह तो रही सोनम की बात. जहां तक बारबरा की बात है तो कॉन फिल्मोत्सव के दौरान फिल्म *काइट्स* के प्रचार के लिए रीतिक रोशन वहां गए थे. साथ में बारबरा भी थीं. ऐश ने फिल्म *काइट्स* की हीरोइन बारबरा मोरी को जब उनकी आने वाली फिल्म की बधाई दी तो बारबरा उनसे हैलो करके चली गईं. इससे ऐश बुरा मान गईं. बाद में उन्होंने अपनी नाराज़गी का इज़हार भी कर दिया. ऐश के इस तरह के व्यवहार से उन्हें जानने-समझने वाले हैरान हैं. वजह है कि ढूंढ़े नहीं मिल रही.

नीतू चंद्रा ने मचाया बवाल

लोकसभा चुनाव ख़त्म होते ही महाराष्ट्र नवनिर्वाण सेना यानी एमएनएस फिर चर्चा में है. अबकी उसकी शिकार हुई हैं अभिनेत्री नीतू चंद्रा. *ट्रैफिक सिंगनल, ओए लकी-लकी ओए* और *13बी* जैसी फिल्मों से चर्चा में आईं नीतू पिछले दिनों एमएनएस के गुस्से का शिकार हो गईं. वैसे उन्होंने जैसा काम किया था, उससे कोई भी खफ़ा हो सकता था. दरअसल वह एक थ्री स्टार होटल में फोटो शूट करा रही थीं. किसी फिल्म के लिए नहीं, बल्कि *द मैन* नामक पत्रिका के लिए. पत्रिका को अपने फ्रंट पेज के लिए दो हॉट अभिनेत्रियों के सेक्सी फोटो चाहिए थे. इसके लिए नीतू के साथ कृषिका गुप्ता नामक मॉडल की जोड़ी बनाई गई. दोनों के उत्तेजक अंदाज़ वाले फोटो लिए जाने लगे. बिकनी पहनी इन दोनों अभिनेत्रियों के अंदाज़ इतने उत्तेजक थे कि होटल में मौजूद लोग भड़क गए. अचानक उन पर फब्तियां कसी जाने लगीं. देखते ही देखते बात होटल से बाहर निकल गई और आनन-फानन में वहां बहुत सारे लोग जमा हो गए. लोगों ने समलैंगिक अंदाज़ में लिए जा रहे फोटो पर आपत्ति की. वहां *जय महाराष्ट्र* के नारे लगने लगे. नीतू ख़ुद भी मानती हैं कि दो लड़कियों को इस तरह की उत्तेजक मुद्रा में दिखाना शायद कुछ अधिक ही बोल्ड हो गया था. नीतू के मुताबिक राजनीतिक धौंस दिखाते हुए लोगों ने उन्हें डराया, जिससे काम जल्दी ख़त्म कर पूरी टीम को वहां से भागना पड़ा. हालांकि बाद में पता करने पर मालूम हुआ कि इस पूरे मामले में एमएनएस वाले सीधे-सीधे नहीं जुड़े थे. लेकिन स्थानीय युवकों के पहुंचने से स्थिति तनावपूर्ण ज़रूर हो गई थी और धौंसपट्टी के मक़सद से ही उन लड़कों ने एमएनएस और *जय महाराष्ट्र* के नारे लगाने लगे थे. जो भी हो, इससे यह तो साफ हो ही गई कि अभिनेत्रियों को सार्वजनिक स्थानों पर अपने पहनावे पर ध्यान अवश्य देना चाहिए. साथ ही समलैंगिक जैसे विषयों के जरिए लोगों की भावनाओं का इस्तेमाल नहीं होना चाहिए, वरना लेने के देने भी पड़ सकते हैं.

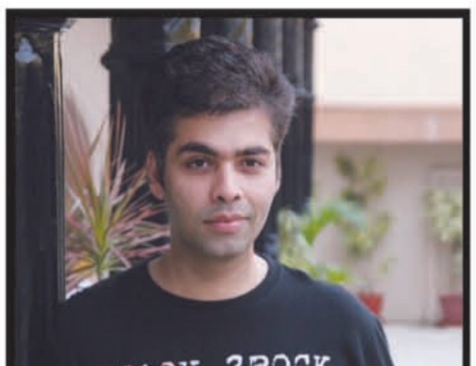

करण पर कहर

करण जौहर के सितारे आजकल गर्दिश में हैं. पिछले दिनों विदेशी कलाकारों और तकनीशियनों को लेकर वह क़ानूनी पचड़े में फंस गए थे, अब उनकी फिल्म-माई नेम इज़ ख़ान-का प्रदर्शन टल गया है . शाहरुख़ और काजोल की यह फिल्म पहले दिसंबर में रिलीज होने वाली थी. लेकिन मल्टीप्लेक्स की हड़ताल लंबी खिंच जाने से तमाम नई फिल्मों का प्रदर्शन रुका हुआ है. ऐसे में हड़ताल टूटते ही रिलीज होने के लिए फिल्मों की लाइन लग जाने वाली है. हड़ताल के बाद फिल्में थोक के भाव में सिनेमाघरों में लगेंगी. जिससे किसी भी एक फिल्म को पर्याप्त दर्शक मिलने मुश्किल हो जाएंगे. वैसे करण ने इन बातों को ध्यान में रख कर ही इस फिल्म को दिसंबर के दूसरे सप्ताह में रिलीज करने का सोचा था. तब यह आमिर ख़ान की *3-इडियट्स* की रिलीज से दो हफ्ते पहले ही रिलीज होती. इसके अलावा दिसंबर में सैफ, करीना की *कुर्बान* भी रिलीज होने वाली है. ऐसे में करण अपनी फिल्म अगले साल ही रिलीज करना चाहेंगे. यानी शाहरुख़ और काजोल को एक साथ फिर से देखने के लिए अभी और इंतज़ार करना होगा.

जिया बीच में ही फिल्म की शूटिंग से आउट हुई

जिया ख़ान को अमिताभ के साथ *नि:शब्द* में जिसने भी देखा, वह देखता ही रह गया था. बिग-बी के साथ आत्मविश्वास से भरे उनके अभिनय का बॉलीवुड ने भी लोहा माना. प्रतिभाशाली अभिनेत्री के तौर पर उनकी चौतरफ़ा चर्चा शुरू हो गई थी. इन सबसे उनके करियर को पंख लग जाने चाहिए थे, जो नहीं हुआ. इसलिए कि थोड़ी-बहुत सफलता मिलते ही उनके पैर ज़मीन से उठ गए. दिमाग़ तो मानो सातवें आसमान पर ही पहुंच गया. इसका नतीजा यह रहा कि कई अच्छी फिल्में हाथ से निकल गईं. इनमें कुछ बड़े बैनरों की फिल्में भी थीं. और तो और, आमिर ख़ान ने अपनी फिल्म *गजनी* में जिया को भी अवसर दिया, लेकिन वह अपनी भूमिका के साथ न्याय नहीं कर सकीं. यह इसलिए भी अजीब लगा था कि आमिर ख़ान जब भी कोई फिल्म हाथ में लेते हैं, तो वह एक-एक फ्रेम पर मेहनत करते हैं. एक एक्स्ट्रा कैसे खड़ा रहेगा, वह इस पर भी ध्यान देते हैं. ऐसे में जिया ख़ान ने जिस तरह *गजनी* वाली भूमिका निभाई, उससे कई सवाल खड़े हुए थे. ख़ुद जिया के खेमे का कहना था कि उसकी भूमिका पर कैंची चल गई थी. अब उन्हें कोई कैसे समझाए कि कोई भूमिका सिर्फ़ इसलिए जानदार नहीं हो जाती कि उसकी लंबाई होती है. जब आप मुख्य भूमिका में नहीं हैं, तो अपनी प्रतिभा को दिखाने के लिए एक-एक शॉट का इस्तेमाल करना चाहिए था. वैसे ध्यान से देखें तो आसिन की भूमिका की लंबाई भी अधिक नहीं थी. लेकिन वह इसी *गजनी* से स्टार बन गईं और जिया बेकरार ही रह गईं. यह सही है कि किसी भूमिका को उभारने में निर्देशक भी बहुत मायने रखता है, लेकिन उसे कलाकार में पहले दम होने का विश्वास तो हो. ऊपर से सेट पर उनके व्यवहार की शिकायत भी होती रही. यही कारण रहा कि आमिर के साथ फिल्म करके भी वह कोई ख़ास लाभ नहीं उठा सकीं. उनके व्यवहार को देख कर निर्माता-निर्देशक उनकी जगह दूसरी अभिनेत्रियों को साइन करने लगे हैं. अभी हाल में ही जिया के हाथ से एक फिल्म तब निकल गई, जबकि वह शूटिंग भी लगभग पूरी कर चुकी थीं. यह फिल्म थी-*याहू*. निर्देशक केन घोष की शाहिद स्टार फिल्म *याहू* से जिया खान के इस तरह आउट होने से सब हैरान हैं. दरअसल, जिया को पता ही नहीं चल रहा था कि सेट पर क्या हो रहा है. जहां फिल्म के अभिनेता शाहिद एक शॉट के बाद अपने डायलॉग की रिहर्सल करते रहते थे वहीं जिया का दिल-दिमाग रिहर्सल के बजाय अपने फोन से चिपकी रहती थीं. यहां तक कि जब सीन समझाया जाता तब भी वह ध्यान केंद्रित नहीं कर पाती थीं. तंग आकर निर्देशक ने उन्हें बाहर का रास्ता दिखा दिया. इस फिल्म में उनकी जगह अब जेनेलिया डिसूज़ा आ गई हैं.

लौट के मुन्ना भाई घर को आए

सोनिका अग्रवाल

संजय दत्त मुन्ना भाई तो हो सकते हैं, लेकिन सुनील दत्त नहीं बन सकते. इसलिए कि राजनीति किसी फिल्म की तरह तीन घंटे की कहानी नहीं हुआ करती. राजनीति चूंकि एक प्रक्रिया होती है, इसलिए उसकी शूटिंग टुकड़ों में नहीं होती. उसकी पटकथा पहले से लिखी-लिखाई और संवाद रटे-रटाए नहीं हुआ करते. पर दुर्भाग्य से संजय दत्त ने भारतीय राजनीति को लेकर जो धारणा बना रखी थी, वह सच्चाई कम फिल्मी अधिक थी. इसलिए पर्दे के मुन्ना भाई की भूमिका यहां मामू वाली बन गई. सुनील दत्त ने रूपहले पर्दे से राजनीति की तक की यात्रा भारत भ्रमण करते हुई पूरी की थी. पिता के साथ संजय की उस बहन-प्रिया दत्त-ने क़दम मिलाया था, जिससे आगे निकल जाने की मुन्ना भाई ने बचकानी ज़िद पाल ली थी. हश्र सबके सामने है. प्रिया एक बार फिर चुनाव जीत कर लोकसभा में पहुंच गईं, तो संजय दत्त समाजवादी पार्टी और अमर सिंह के साथ उठक-बैठक करते हुए मुंबई लौट आए. पहले सुप्रीम कोर्ट ने लखनऊ से लोकसभा चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं दी. बाद में सपा ने अपने कमज़ोर पड़ते जनाधार को मज़बूती प्रदान करने के मक़सद से संजय दत्त को भीड़ जुटाऊ नेता में तब्दील कर दिया. भीड़ जुटी, पर उसने वोट में तब्दील होने से मना कर दिया. चुनाव परिणाम बताता है कि सपा और संजय में से किसको लाभ हुआ और किसको हानि.

बहरहाल, अभिनेता से नेता बनने की तमन्ना धरी की धरी रह गई. ऐसे में संजू बाबा को पहला प्यार यानी अभिनय की ही याद आई और वह फिर से कैमरे के सामने आकर खड़े हो गए हैं. संजू के पास फिल्मों के ऑफर कभी कम नहीं रहे, लेकिन वह ख़ुद राजनीति में भी नाम कमाने के चक्कर में फिल्मी दुनिया से कट गए थे. उनके दोस्तों का कहना है कि संजू बाबा ने ऐसा इसलिए किया था कि वह राजनीति के जरिए अपने चरित्र पर लगे दाग़ धोना चाहते थे. लेकिन यहीं संजू बाबा ग़लती कर बैठे. उन्होंने छवि साफ करने के लिए जिस तरह का विकल्प चुना वह राजनीति कम काजल की कोठरी अधिक थी. इसे अब ख़ुद संजय दत्त भी समझ गए हैं. यही कारण है कि वह फिल्मों में न सिर्फ़ लौट आए हैं, बल्कि पूरे साल भर शूटिंग में व्यस्त रखकर प्रायश्चित भी कर रहे हैं. उनकी जल्दी ही आने वाली फिल्म है-आल द बेस्ट, जिसकी शूटिंग गोवा में शुरू भी हो गई है. इसके बाद साउथ अफ़्रीका में अनिल कपूर के साथ फिल्म *नो प्रोब्लम* की शूटिंग चलेगी. संजय अपूर्वा लखिया की उस फिल्म में भी काम करने को तैयार हो गए हैं, जिसमें अमिताभ बच्चन भी हैं. इन फिल्मों की शूटिंग के बाद में वह अधिक समय अपने होम प्रोडक्शन में लगाएंगे. संजय दत्त प्रोडक्शंस की पहली फिल्म में संजय के अलावा रणबीर कपूर भी होंगे. इस फिल्म के निर्देशक डेविड धवन हैं. अगली फिल्म तीन नायकों वाली होगी, जिसे सोहम शाह निर्देशित करेंगे. इन फिल्मों का काम अगले साल तक ही शुरू हो पाएगा.

संजू बाबा के पास फिल्में इतनी अधिक है, वह साल भर तक इधर-उधर देखने तक के लिए समय नहीं निकाल पाएंगे. वह ख़ुद भी कहते हैं कि अब मेरा ध्यान सिर्फ़ और सिर्फ़ शूटिंग पर रहेगा. यानी राजनीति को अब और समय देना उनके लिए मुमकिन नहीं. इस तरह राजनीति में अब दत्त परिवार से एक नाम ही जुड़ा रहेगा. वह हैं उनकी बहन प्रिया दत्त. वैसे यह सच है कि कलाकारों को राजनीति जब-तब अपनी ओर आकर्षित करती रही है. फिल्म जगत से संसद सदस्य बनने वाले पहले सदस्य थे-पृथ्वी राजकपूर. उन्हें सम्मान देते हुए राज्य सभा का सदस्य बनाया गया था. बाद में संजय दत्त की मां नर्गिस को भी राज्यसभा का सदस्य बनाया गया था. इसके बाद राज्यसभा ही नहीं, लोकसभा में भी फिल्म वालों के पहुंचने का सिलसिला चल पड़ा. राजनेता के रूप में सबसे सफल रहने वाले अभिनेता संजू बाबा के पिता सुनील दत्त ही थे. उनके बाद शत्रुघ्न सिन्हा, विनोद खन्ना और हेमा मालिनी ने भी राजनीति पर अपनी छाप छोड़ी. राज्यसभा सदस्य के नाते शबाना आज़मी ने अपनी अलग पहचान बनाई. यह सूची बिग-बी यानी अमिताभ बच्चन के बगैर अधूरी ही रह जाएगी, क्योंकि वह पहले अभिनेता थे जो सीधे चुनाव जीत कर संसद में पहुंचे थे. पर कुछ ऐसे नाम भी हैं, जिन्होंने राजनीति में आकर अपना मज़ाक ही उड़वाया. इनमें सबसे पहला नाम निश्चय ही धर्मेंद्र का लिया जाएगा. गोविंदा ने भी अपनी छीछालेदर कम नहीं कराई. बहरहाल, संजय दत्त इस मायने में भाग्यशाली ही कहे जाएंगे कि उन्हें सच्चाई जल्दी ही समझ में आ गई और वह लौटकर बॉलीवुड आ गए.

sonika.chauthiduniya@gmail.com